ISSN 0975-8321

वाङ्मय *त्रैमासिक*

वर्ष : 11 जुलाई 2014

सम्पादक
डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद
मोबाइल : 9044918670

सलाहकार सम्पादक
डॉ. मेराज अहमद

वाङ्मय पत्रिका अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध **www.vangmay.com**

परामर्श मण्डल
प्रो. रामकली सराफ (बी.एच.यू),
मूलचन्द सोनकर (वाराणसी),
डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ (अलीगढ़),

सम्पादकीय सम्पर्क
205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड,
सिविल लाइन, अलीगढ़-202002
मोबाइल : 9044918670/9719304668
E-mail : vangmaya2007@yahoo.co.in
vangmaya @gmail .com

सहयोग राशि :
एक प्रति : 40 रु., व्यक्तिगत शुल्क पाँच वर्ष के लिए 1000 रु., वार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 300 रु., द्विवार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 500 रुपये, व्यक्तिगत आजीवन सदस्य : 2000 रुपये, (दस वर्ष के लिए) संस्थाओं के लिए आजीवन : 3,000/(दस वर्ष के लिए)

सह–सम्पादक
डॉ. इकरार अहमद
मो.आसिफ खान **(मोबाइल : 9719304668)**

कानूनी सलाहकार
एम. एच. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)
एम. ए. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)

सम्पादन/संचालन
अनियतकालीन, अवैतनिक और अव्यावसायिक।
रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं।
रचनाओं पर कोई आर्थिक मानदेय नहीं दिया जाएगा।
लेखकों, सदस्यों एवं मित्रों के आर्थिक सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती है।
उनसे सम्पादक-प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र अलीगढ़ होगा।

रचनाकारों से......

- रचनाएँ कृतिदेव 10 में टाइप कराकर ही भेजें।
- रचनाओं के साथ पोस्टकार्ड होने पर ही प्राप्ति की सूचना भेजी जाएगी।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ आने पर ही अस्वीकृति रचना लौटायी जा सकती है अन्यथा नष्ट कर दी जाएगी।
- कृतियों की समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना अनिवार्य है।
- नमूना प्रति अवलोकन के लिए 40.00 रुपये के डाक टिकट या एम. ओ. भेजना अनिवार्य है।
- हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं की रचनाओं का वाङ्मय स्वागत करता है।

शुल्क भेजने का पता

मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट : *'डॉ. फ़ीरोज़ अहमद या वाङ्मय'* के नाम
205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002

डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद की ओर से डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद द्वारा प्रकाशित, डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद द्वारा मुद्रित तथा नवमान आफसेट प्रिंटर्स अलीगढ़ में मुद्रित एवं ई-3, अब्दुल्लाह क्वाटर्स, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग अलीगढ़ से प्रकाशित। सम्पादक- डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद

सम्पादकीय

सतीश कुमार का आलेख 'अपवित्र आख्यानः मुस्लिम समाज की पीड़ा' में मुस्लिम समाज के यथार्थ को समझाने की कोशिश की है। अब्दुल बिस्मिल्लाह हिन्दी साहित्य के जनवादी लेखक हैं। इनके साहित्य में आम लोगों की तड़प साफ दिखाई देती है। इनके साहित्य में आम जनता की स्थिति, उनकी समस्याएँ व आम लोगों की गूंज स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है। इन्होंने विवश आम आदमी की त्रासद स्थितियों और मुक्ति के लिए सतत् संघर्ष को अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'अपवित्र आख्यान' अब्दुल बिस्मिल्लाह का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जो अल्पसंख्यक समाज की पीड़ा को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है।

'प्रेमचंद की कहानियों में मनोवैज्ञानिक संदर्भ' आलेख भारती ने लिखा है जिसमें उन्होंने मनोवैज्ञानिकता की महत्ता और मानदण्ड को शब्दबद्ध किया है। जिसकी कसौटी पर उन्होंने प्रेमचंद की कहानियों को परखने का प्रयास किया है।

डॉ. संजीव कुमार जैन और डॉ. वारिश जैन ने 'सुपर हाइवे बनाम ज़ीरो रोड' आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने समकालीन समय और समाज की परिस्थितियों को देखते हुए, नासिरा शर्मा के उपन्यास ज़ीरो रोड को मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। जिसमें उन्होंने ज़ीरो रोड उपन्यास को भूमंडलीकरण का दुर्दांत चेहरा माना है।

'नासिरा शर्मा की कहानियों में राजनीतिक बोध' आलेख यशवंती ने लिखा हैं। जिसमें उन्होंने राजनीति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उसका जीवन और साहित्य से अंतर्संबंध बताने की कोशिश की है। तत्पश्चात् नासिरा शर्मा की कहानियों में राजनीतिक बोध को दिखाया है।

कमल ने 'चंद्रकांत देवताले कृत 'पत्थर फेंक रहा हूँ में व्याप्त समाज' आलेख लिखा है जिसमें उन्होंने व्यक्ति और समाज का संबंध बताते हुए समकालीन समाज के यथार्थ को दिखाया है। जिसकी वजह से समकालीन समाज में विभिन्न विकृतियाँ उपज चुकी है।

'संत कवि रैदास के साहित्य में लोकमंगल की भावना' आलेख दुर्गा खत्री ने लिखा है। जिसमें उन्होंने मध्यकाल को संकट और समस्या से भरा हुआ और संत कवि रैदास के साहित्य में लोकमंगल की भावना को भलीभाँति समझने और समझाने की कोशिश की है।

अशोक कुमार ने 'स्त्री-विमर्शः एक अध्ययन' आलेख लिखा है जिसमें उन्होंने डॉ. राजवीर सिंह धनखड़ कृत 'जाला जीवन का' उपन्यास को केंद्र में रखा है। इस आलेख में उन्होंने स्त्री-विमर्श की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसी कसौटी पर उपन्यास को परखने की कोशिश की है।

'अगर पृथ्वी जनशून्य हो जाय तो....' आलेख डॉ. प्रदीप लाड़ ने लिखा है जिसमें उन्होंने वैज्ञानिक एकांकी ''वरूण ग्रह की धरती पर' को केंद्र में रखते हुए विज्ञान कथा का संक्षिप्त इतिहास भी प्रस्तुत किया है।

उर्मिला देवी ने 'समकालीन परिवेश में राजेश का योगदान' आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने साहित्य और परिवेश का संबंध रेखांकित करते हुए साहित्यकार के दायित्व की चर्चा की है। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने राजेश जोशी के योगदान को दिखाया है।

अज्ञेय, मुक्तिबोध और सर्वेश्वर : कितने दूर, कितने पास, अरुण प्रसाद रजक ने आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने तीनों कवियों के काव्यों के उन पक्षों को उठाने की कोशिश की है। जिसमें उनकी समानता और असमानता को दिखाया है

डॉ. सरिता रानी ने प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि पर गाँधीवाद पर प्रभाव आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने रंगभूमि और गोदान उपन्यास को केंद्र में रखकर कथा साहित्य में प्रेमचंद की महत्ता बताते हुए, उनकी सामाजिक दृष्टि पर गाँधीवाद के प्रभाव को रेखांकित किया है।

दिनेश कुमार ने स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने स्त्री विमर्श की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए, उसे हिंदी साहित्य में दिखाने का प्रयास किया है।

'उपेंद्रनाथ अश्क : एक बहुरंगी व्यक्तित्व' आलेख विकेश कुमार मिश्र ने लिखा है। जिसमें उन्होंने जीवन, समाज और साहित्यकार के संबंध को स्पष्ट किया है और इसी कसौटी पर उपेंद्रनाथ अश्क के व्यक्तित्व को परख कर बहुरंगी व्यक्तित्व के

रूप में देखा है।

एन मोहना ने 'आधुनिक युग के शैक्षिक क्षेत्र में भारतीय नारी के आदर्श' आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने शिक्षा के स्वरूप को स्पष्ट करने के पश्चात् स्त्री शिक्षा की ज़रूरत को महसूस किया है और उसकी महत्ता को शब्दबद्ध किया है।

डॉ. तसनीम पटेल ने आदिवासी विमर्श आलेख लिखा है जिसमें आदिवासी विमर्श की महत्ता बताते हुए उनकी लुप्त होती संस्कृति और भाषा के संकट को रेखांकित किया है।

देवेंद्र कुमार मिश्र ने, आकाश हो गई और स्वार्थ दो कविताएं लिखी है जिसमें स्वार्थ कविता में उन्होंने उत्तर आधुनिक समय में बिखरते रिश्ते के कारणों को शब्दबद्ध करने की कोशिश की है।

केवल गोस्वामी ने 'मैट्रिक फेल-बी.ए. पास करें व्यंग्य लिखा है। जिसमें उन्होंने आधुनिक शिक्षा की जर्जर हालत पर व्यंग्य करते हुए, राजनीति का विकृत चहेरा को उजागर करने का भरसक प्रयास किया है।

वाङ्मय के इस अंक में, पाठक वर्ग के सामने साहित्य के सर्जनात्मक पक्ष को भी रखने की कोशिश की है। ये तो पाठक वर्ग के पढ़ने और मूल्यांकन के पश्चात् ही ज्ञात हो पायेगा, यह प्रयास कितना सार्थक रहा हैं-

इस पक्ष में डॉ. हस्सान अहमद आजमी की 'कोयला भई न राख', 'तस्वीर पर चढ़े फूल', फराह सईद और इंदुमति सरकार की एक और औरत का वेश्या होना है। जिसमें समाज के यथार्थ को उजागर करने का प्रयास किया गया है। इंदुमति सरकार ने अपनी कहानी में स्त्री-पुरुष के उन संबंधों को उजागर किया है जिनमें स्त्री मात्र वस्तु के रूप में दिखाई देती है। जो वास्तव में स्त्री-विमर्श की आवाज़ उठाने में समक्ष रही है।

डॉ. शिवंचद प्रसाद ने औरतों की दुनिया का सच, (आधी दुनिया, उपन्यास) लिखा है। जिसमें उन्होंने आधी दुनिया का सच और ढहता हुआ सामंतवाद की प्रवृत्ति के रूप में देखते है।

रमाकांत राय ने, डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान की पुस्तक 'मुस्लिम विमर्शः साहित्य के आईने में', पुस्तक की समीक्षा की है। जिसमें उन्होंने भारतीय समाज के दो बड़े समुदाय, हिंदू-मुसलमान के परस्पर संबंध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया है और हिंदी साहित्य मे मुस्लिम उपस्थिति कम है। लेकिन वे इस पुस्तक को नवचार के रूप में देखते हुए पुस्तक के लेखक डॉ. फ़ीरोज़ खान को नवाचार को प्रश्रय देने वाले लेखक के रूप में देखते है क्योंकि वे निरंतर उपेक्षित और महत्त्वपूर्ण रचनाकारों और रचनाओं के केंद्र में लाने के लिए निरंतर प्रयास करते रहें है। इसी पुस्तक की एक और समीक्षा भी प्रस्तुत की गयी है। जिसको सुनील यादव ने लिखा है। 'मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में' एम. फ़ीरोज़ खान की नई पुस्तक है। इस किताब का ऐतिहासिक महत्त्व इसलिए है कि यह वैज्ञानिक तरीके से मुस्लिम समाज की संरचना, उसके रीति-रिवाज तथा मान्यताओं पर बात करती है। यह दुखद है कि मुस्लिम समाज पर ठहरकर कोई समाजशास्त्रीय काम कम से कम हिंदुस्तान में नहीं हुआ है, हुए भी हैं तो छिटपुट काम हुए हैं। यह किताब इस कमी को पूरा करती है, साथ ही मुस्लिम समुदाय के संदर्भ में फैलाई गई तमाम भ्रांतियों का पर्दाफास भी करती है। यह पुस्तक दो खंडों में है- पहला खंड जिसे हम सैद्धान्तिक खंड कह सकते हैं मुस्लिम समाज के विविध पहलुओं पर है। दूसरा, व्यवहारिक खंड में हिंदी में लिख रहे मुस्लिम रचनाकारों की सर्वश्रेष्ठ कृतियों के मूल्यांकन का है, इन दोनों खंडों को मिलाकर पढ़े तो यह मुस्लिम समाज की मुक्कमल तस्वीर पेश करती हुई पुस्तक है।

फ़ीरोज़

वाङ्मय पत्रिका का अगला आयोजन

कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह के समग्र साहित्य पर केन्द्रित होगा।

अनुक्रम

सम्पादकीय
सतीश कुमार
अपवित्र आख्यान : मुस्लिम (अल्पसंख्यक) समाज की पीड़ा/7

भारती
प्रेमचंद की कहानियों में मनोवैज्ञानिक संदर्भ/10

डॉ. संजीव कुमार जैन/डॉ. वारिश जैन
सुपर हाइवे बनाम ज़ीरो रोड/14

यशवंती
नासिरा शर्मा की कहानियों में राजनीतिक बोध/18

कमल
चंद्रकांत देवतालेकृत पत्थर फेंक रहा हूँ में व्याप्त समाज/22

दुर्गा खत्री
रैदास के साहित्य में लोकमंगल की भावना : एक अध्ययन/25

अशोक कुमार
स्त्री-विमर्श : एक अध्ययन/27

डॉ. प्रदीप लाड़
वरूण ग्रह की धरती पर : एक मूल्यांकन/29

उर्मिला देवी
समकालीन परिवेश में राजेश जोशी का योगदान/32

अरुण प्रसाद रजक
अज्ञेय, मुक्तिबोध और सर्वेश्वर : कितने दूर, कितने पास/35

दिनेश कुमार
स्त्री–विमर्श और हिन्दी साहित्य/38

डॉ. सरिता रानी
प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि पर गाँधीवाद का प्रभाव/45

विकेश कुमार मिश्र
उपेन्द्रनाथ अश्क : एक बहुरंगी व्यक्तित्व/51

एन. मोहना/डॉ. शशि प्रभा जैन
आधुनिक युग के शैक्षणिक क्षेत्र में भारतीय नारी के आदर्श/53

डॉ. तसनीम पटेल
आदिवासी विमर्श/55

कहानी/व्यंग्य/कविता/समीक्षा

इंदुमति सरकार
एक और औरत का वेश्या होना/57

फरहा सईद
तस्वीर पर चढ़े फूल/64

डॉ. हस्सान आज़मी
कोयला भई न राख/67

देवेन्द्र कुमार मिश्र
आकाश हो गई, स्वार्थ/69

केवल गोस्वामी
मैट्रिक फेल–बी.ए. पास करे/70

डॉ. शिवचंद प्रसाद
औरतों की दुनिया का सच/72

सुनील यादव
साहित्य और समाज के लोकतांत्रिककरण की प्रक्रिया का नया आख्यान/75

रमाकांत राय
मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में/78

शोध आलेख

अपवित्र आख्यान : मुस्लिम (अल्पसंख्यक) समाज की पीड़ा

सतीश कुमार

अब्दुल बिस्मिल्लाह हिन्दी साहित्य के जनवादी लेखक हैं। इनके साहित्य में आम लोगों की तड़प साफ दिखाई देती है। इनके साहित्य में आम जनता की स्थिति, उनकी समस्याएँ व आम लोगों की गूंज स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है। इन्होंने विवश आम आदमी की त्रासद स्थितियों और मुक्ति के लिए सतत् संघर्ष को अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'अपवित्र आख्यान' अब्दुल बिस्मिल्लाह का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जो अल्पसंख्यक समाज की पीड़ा को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है। उपन्यास का नायक जमील अहमद अल्पसंख्यकवाद की सीमाओं को समझता है, इसलिए वह अपने राष्ट्रीय चरित्र को बनाए रखने के लिए प्रयासरत है। लेकिन समाज का सभ्य समाज बार-बार उसे यह एहसास दिलाता है कि वह मुसलमान है। उसके मुसलमान होने का एहसास, हिन्दू ही नहीं बल्कि उसके अपने सम्प्रदाय के लोग भी खूब कराते हैं। यासमीन और जमील के वार्तालाप का उदाहरण द्रष्टव्य है- "क्यों नहीं! कल को यह भी भूल जाओगे कि तुम मुसलमान हो।" यासमीन के इस प्रश्न का जवाब देते हुए जमील कहता है- "नहीं, यह तो मैं चाहकर भी नहीं भूल सकूँगा। लोग भूलने ही न देंगे।"[1]

भारत में मुसलमान होने के क्या मायने हैं? इस प्रश्न को 'अपवित्र आख्यान' में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने दो भिन्न रूपों में व्यक्त किया है। पहले वर्ग में डॉ॰ सादिक, यासमीन तथा उसके परिवार के लोग तथा नकदी जैसे नेता हैं तथा दूसरे वर्ग में इकबाल अहमद जैसे लोग हैं। इन दोनों वर्गों में स्पष्ट विभाजन है जो मुस्लिम समाज के सामाजिक वर्गों की प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। यासमीन तथा डॉ॰ सादिक जैसे मुसलमानों को उनकी आर्थिक पहचान से फायदा मिलता है। अतः वे लोग अपनी धार्मिक पहचान पर बल देते हैं। जबकि इकबाल अहमद उस अल्पसंख्यक मुसलमान का प्रतिनिधित्व करता है जिसे अपने जीवन-निर्वाह के लिए नाम बदलकर नौकरी करनी पड़ती है। इकबाल अहमद, इकबाल बहादुर सिंह जैसे हिन्दू नामकरण के आधार पर एक अख़बार में नौकरी पाता है। इसीलिए उसे भारत केवल नाम का सेक्यूलर देश लगता है। हालांकि भारतीय संविधान में भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र कहा गया है। लेकिन वास्तविकता के धरातल पर हमें इसका छदम् रूप देखने को मिलता है। इसकी पुष्टि लेखक ने जमील के द्वारा कहे गए इन शब्दों के माध्यम से की है- "इसलिए कि हम यहाँ दूसरे दर्जे के शहरी हैं। एक सेक्यूलर मुल्क होते हुए भी हिन्दुस्तान असल में हिन्दू मुल्क है।"[2]

यहाँ मुस्लिमों के साथ दोयम दर्जे का बर्ताव किया जाता है। "शासन सत्ता तथा सरकार के साथ मुसलमानों के रिश्तों के लिहाज से भी हालत किसी माने में बेहतर नहीं हैं। उनके खिलाफ हर क्षेत्र में भेदभाव होता है। अगर कहीं कोई नौकरी की जगह खाली है, चाहे निजी क्षेत्र में हो या सरकारी क्षेत्र में, मुसलमान आखिरी विकल्प होगा। इसकी भी कोई गारंटी नहीं है कि पदोन्नति आदि के मामले में उसे, उसका हिस्सा मिलेगा। हाँ, अगर वह सोर्स-सिफारिश की जुगाड़ कर सकता हो, तो दूसरी बात है।"[3] सरकारी नौकरियाँ तो दूर की बात, उन्हें आसानी से कोई काम नहीं मिलता और उन्हें बेरोजगारी एवं बेकारी का सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि इकबाल अहमद को शहर में कहीं भी कोई काम नहीं मिलता। इसलिए वह अपना नाम बदलकर इकबाल बहादुर राय रख लेता है, तब जाकर उसे एक अख़बार में पत्रकार की नौकरी मिलती है। वह स्वयं को मारकर जीता है, क्योंकि उसे अपना पेट जो पालना है। मुसलमान की कोई अपनी खुशी नहीं है और न ही दुःख। उसे स्वयं पत्रकार होते हुए भी ऐसी ख़बरें छापनी पड़ती है जिसमें दंगों का जिम्मेदार मुसलमानों को साबित किया जाता है। वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता। इकबाल का यह दर्द जमील और उसकी बातचीत के दौरान सामने आता है- "हमारी खुशी और नाखुशी क्या है?" इकबाल बहादुर राय ने बाहर निकलकर सड़क पर चलते हुए कहना शुरू किया, "अगर मैं इकबाल बहादुर राय हूँ तो समझिए, खुश हूँ, पर अगर मैं इकबाल अहमद हूँ... जमील साहब, हमारे दफ़्तर में ईद, बकरीद, मुहर्रम वगैरह की छुट्टी नहीं होती। प्रेस में एक मुसलमान मजदूर है; जिसे बाकायदा दरख्वास्त देकर छुट्टी लेनी पड़ती है और उस दिन की उसे तनख़्वाह नहीं मिलती। ईद

की नमाज़ मैं उसी साल पढ़ता हूँ जिस साल संडे को ईद होती है। हमारे अख़बार में नवरात्र, गणेश पूजन और न जाने कौन-कौन से त्यौहारों के विवरण छपते हैं- सचित्र, पर हमारे त्यौहारों की न्यूज रद्दी की टोकरी में डाल दी जाती है। दंगों की ख़बरें इस तरह छापी जाती हैं कि मुसलमान ही दंगाई साबित हों। लेकिन मैं कुछ नहीं कर सकता। अब अगर यह खुशी है, तो ठीक ही है।"[4]

भला हम हिन्दुस्तान को कैसे एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र कह सकते हैं। इस देश में सभी भारतीय हैं, पर अपने आप को कोई भारतीय समझता ही नहीं है। सभी अपनी पहचान अपने समुदाय को केन्द्र में रखकर बताते हैं। यहाँ कोई मुसलमान है तो कोई हिन्दू, कोई सिक्ख है तो कोई ईसाई। सभी की पहचान कहीं क्षेत्र के आधार पर तो कहीं भाषा के आधार पर की जाती है। इस देश में अपने को कोई भारतीय तो समझता ही नहीं। "भारतीय तो हैं, मगर समझता नहीं। कोई स्वयं को हिन्दू समझता है तो कोई मुसलमान।"[5] इतना ही नहीं, यहाँ तो मुहल्लों की पहचान की हिन्दू और मुस्लिम के रूप में होती है। "कमबख़्त क्या मुसीबत है! इस शहर के मुहल्ले भी हिन्दू और मुसलमान है।"[6]

मुस्लिम समाज को अपने उत्थान के लिए सरकार के सामने हाथ फैलाने पड़ते हैं। सरकार इनके (अल्पसंख्यक) लिए योजनाएँ तो बनाती है, लेकिन वे यथार्थ के धरातल पर केवल कागज़ों तक ही सीमित रह जाती हैं। ये योजनाएँ केवल मुस्लिम वोट प्राप्त करने के उद्देश्य से बनाई जाती हैं। इन्हें कार्य रूप कभी दिया ही नहीं जाता। केवल आंकड़ें बनाने के लिए ही भावी योजनाओं की आधारशिला रखी जाती है। अगर ऐसा न होता तो मुस्लिमों को अपने स्कूल की मान्यता लेने के लिए उसका नाम न बदलना पड़ता। वे धर्मनिरपेक्ष देश में रहते हुए भी किसी मुस्लिम नाम से स्कूल को मान्यता दिलाने में नाकाम रहते हैं। "मौलवी फैयाजुद्दीन मिडिल स्कूल से बदलकर 'महात्मा गाँधी मिडिल स्कूल' कर दिया। जाहिर है, नाम इतना सेकुलर था कि थोड़ी-बहुत रिश्वत के बाद ही मान्यता मिल गई। कुछ दिनों बाद यह इंटर कॉलेज भी हो गया।"[7]

भारतीय समाज में मुस्लिमों को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है- "भारत में मुसलमान देश के आंतरिक शत्रु हैं। हिन्दुओं ने मुस्लिम समुदाय के प्रति अविश्वास और शत्रुता का प्रचार किया है।"[8] मुस्लिमों को कभी भारतीयों की दृष्टि से देखा ही नहीं जाता। उन्हें तो विदेशी समझा जाता है। "मुसलमान मूलतः आतंकवादी होते हैं।"[9] "यह अजीब विडम्बना है कि सैकड़ों वर्षों से इसी भूमि पर रहने के बावजूद ऐसा माना जाता है कि वे (मुस्लिम) बाहरी हैं। बहुसंख्यक हिन्दू जनता को मुस्लिमों की बढ़ती आबादी का भय दिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त मुस्लिमों को प्रवृत्ति से हिंसक, कट्टर और स्त्री के प्रति दमनात्मक दिखाया जाता है।"[10] उन्हें कभी देश का नागरिक समझा ही नहीं गया। उनकी विश्वसनीयता को हमेशा से ही संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। इतना ही नहीं, उन्हें पड़ोसी देश पाकिस्तान का एजेंट समझा जाता है। लेखक ने इस तथ्य को नसीम के माध्यम से अभिव्यक्त किया है- "तुम हो मुसलमान। आज़ाद हिन्दुस्तान के यानि पाकिस्तानी एजेंट, समझे?"[11] अतः स्पष्ट है कि मुस्लिमों के हृदय में भी यह बात बैठ चुकी है कि उन्हें भारतीय कभी समझा ही नहीं गया है। उनका देश में अपना कोई वजूद नहीं है। उन्हें अछूत समझा जाता है। घृणा और द्वेष की दृष्टि से देखा जाता है। उनके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है- "मुस्लिम हमेशा शंका के कटघरे में खड़े होते हैं।"[12]

बुढ़िया द्वारा इकबाल बहादुर राय से जमील के बारे में यह पूछे जाने पर कि ये किस जाति के हैं तो इकबाल ने जब यह जवाब दिया कि यह मुसलमान है तो बुढ़िया ने उसकी तरफ से आँखें फेर ली और ग्राहकों के आलू-चाप गरम करते हुए कहा "तो बेटा, तुम्हीं पानी पिला देना।"[13] अर्थात् बुढ़िया को उसके हाथ का पानी पीना भी गंवारा नहीं है। इस प्रकार के व्यवहार से जमील को अपने मुसलमान होने का पता चला और वह इकबाल से कहता है- "आज चाट बेचने वाली बुढ़िया की दिशा में जाने पर मुझे बोध हुआ कि मैं मुसलमान हूँ और आप हिन्दू।"[14]

हिन्दू समाज में मुसलमान बाहुल्य क्षेत्र को छोटा पाकिस्तान की संज्ञा दी जाती है। पाकिस्तान मतलब-जानी दुश्मन। उस क्षेत्र के प्रति यह आम धारणा बना दी जाती है कि रात के वक्त उस दिशा में जाना ही नहीं, क्योंकि मुसलमान कट्टर और क्रूर होते हैं। बड़े ही निर्दयी होते हैं। वे हिन्दुओं को काटकर अपनी दुकानों में टांग लेते हैं। इसीलिए मुस्लिम आबादी वाले इलाकों में हिन्दू रिक्शेवाले भी रात के वक्त जाने से डरते हैं- "छोटा पाकिस्तान! शहर के लोग उस इलाके को इसी नाम से सम्बोधित करते थे- हिन्दू रिक्शेवाले रात के वक्त उस तरफ जाने से डरते थे- कहीं काटकर लोग अपनी दुकानों में न टांग लें।"[15] अतः स्पष्ट हैं कि विभाजन के समय राजनीतिक कारणों से हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच जो खाई बनी थी वह स्वतन्त्रता की आधी सदी के पश्चात् भी वैसी ही है, कम नहीं हुई है। न केवल हिन्दू बल्कि मुस्लिम समाज में भी ज्यों की त्यों बरकरार है।

भारतीय समाज में मुस्लिमों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। वे मुस्लिमों के किसी भी क्रिया-कलाप को सार्वजनिक स्थल

पर करने नहीं देते। उन्हें हमेशा दबाकर रखा जाता है। जबकि हिन्दू कहीं भी, कभी भी, कुछ भी कर सकते हैं- "नमाज़ पढ़ना है तो किसी मस्जिद में जाएं, यह ट्रेन है।"[16] एक बुजुर्ग जब ट्रेन में नमाज पढ़ने के लिए थोड़े स्थान के लिए सवारियों को कहता है तो उसे यही जवाब मिलता है और इस स्थिति पर अन्य सवारियाँ भी हँसने लगती हैं। इतना ही नहीं हिन्दुओं के मन्दिरों में भी अन्य धर्म के लोगों के प्रवेश पर पाबन्दी है। जिसकी पुष्टि लेखक ने एक मंदिर की दीवार पर लिखी पंक्ति से की है- "अहिन्दू का प्रवेश वर्जित।" इस प्रकार भारतीय समाज में मुसलमानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है।

उपन्यास का नायक जमील 'राष्ट्रीय समानता महाविद्यालय' जैसी किसी सेक्यूलर संस्था में नौकरी की इच्छा रखता है। जबकि परिस्थिति इसके विपरीत है। उसके शुभचिन्तक उसे शिब्ली कॉलेज, आजमगढ़, हलीम कॉलेज, कानपुर या फिर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में जगह तलाश करने की सलाह देते हैं। 'अपवित्र आख्यान' में लेखक ने शिक्षण संस्थाओं की नियुक्तियों में धार्मिक-जातिगत भेदभाव का जो परिदृश्य चित्रित किया, उससे उन शिक्षण संस्थाओं में शिक्षित होने वाले विद्यार्थियों से इन पूर्वाग्रहों मुक्ति की आशा भला कैसे कर सकते हैं। जब इन शिक्षण संस्थानों का यह चरित्र है तो समाज के भविष्य की कल्पना कर सकते हैं। जमील अहमद की नियुक्ति उसके योग्यता के बदले उसके धार्मिक पहचान के कारण होती है। द्रष्टव्य है- "देखिए जमील साहब, बात ये है कि इस पोस्ट को लेकर हम सबकी यानि मुसलमानों की इज्ज़त दांव पर लगी हुई थी। आपको नहीं मालूम, हमारे कॉलेज के कॉमर्स टीचर अब्दुस्सलाम साहब तो इस पर तुले हुए थे कि अगर कोई माकूल कैन्डीडेट न मिले तो उन्हीं को लेक्चरर बना दिया जाए। वे जबरदस्ती घुस गए थे इंटरव्यू देने।"[17]

प्रस्तुत स्थिति काल्पनिक नहीं है। भारतीय समाज में आधुनिकता की यही दिशा है, जो पुराने मूल्यों को आत्मसात् करके चलती है तथा नए मूल्यों को समझौता करने को मजबूर करती है। जमील जैसा युवक निश्चित रूप से ऐसी स्थिति में निराश होगा- "जमील सोच रहा था कि उसका एपाइंटमेंट इसलिए नहीं हुआ कि वह एक योग्य युवक है, बल्कि इसलिए हुआ है कि वह मुसलमान है।"[18] इस प्रकार भारतीय मुसलमान जिसका प्रतिनिधित्व जमील करता है, अपने को चारों ओर से घिरा पाता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह जमील अहमद के माध्यम से मुस्लिम समाज के उदार दृष्टि वाले वर्ग को व्यक्त करते हैं जो अपनी राष्ट्रीय पहचान के लिए संघर्षरत है। उसे अनेक स्तरों पर लड़ाई लड़नी पड़ रही है, एक तरफ वह अपने समाज की अल्पसंख्यक मनोवृत्ति का विरोध करता है।

जमील उस अल्पसंख्यक मनोवृत्ति जिसमें अपने धार्मिक रूझान को कट्टरता से पालन करने की बात होती है, उनका विरोध इन शब्दों में करता है- "क्या नमाज़ पढ़ने या पूजा करने से यूनिवर्सिटी में लेक्चररशिप मिल सकती है? अगर ऐसा होने लगे न तो सारी की सारी यूनिवर्सिटियाँ नमाजियों और पुजारियों से भर जाएँ।"[19]

लेखक ने 'अपवित्र आख्यान' में तथाकथित प्रबुद्ध वर्ग में व्याप्त मुसलमानों के प्रति घृणा, अलगाव, नकारात्मक छवि को जमील तथा 'तूणीर' पत्रिका के सम्पादक रामप्रसाद 'हठी' के संवादों के माध्यम से व्यक्त किया है। 'हठी' सम्पादक का केवल उपनाम ही नहीं है, यह बहुसंख्यकों की प्रवृत्ति को भी व्यंजित करता है। उदाहरणतया-"मतलब यह कि 'तूणीर' का एक अंक हम मुसलमानों की पहचान पर केन्द्रित करने जा रहे हैं। आप इसके लिए कुछ लिखिए। कोई धांसू चीज।"

"मसलन?"

"मसलन, यह कि मुसलमान लोग एक से अधिक शादियाँ करते हैं...." वो तो हिन्दू लोग भी करते हैं। स्वयं प्रेमचंद ने की थीं। जयशंकर प्रसाद.... "अच्छा छोड़िए" श्री रामप्रसाद 'हठी' जी ने थोड़ा सहज होते हुए कहा, "यह तो आप मानते हैं न कि मुसलमानों में उतनी सहिष्णुता नहीं होती, जितनी औरों में होती है। इस पर लिखिए।"

"क्यों, क्या हिन्दुओं की असहिष्णुता का आपको पता नहीं? उन्होंने बौद्धों को यहाँ से खदेड़ डाला और नालन्दा का क्या हाल किया?".....

"क्षमा कीजिएगा 'हठी' जी, सिवा कुछ धार्मिक मामलों के भारतीय मुसलमानों की कोई अलग पहचान नहीं है।"[20]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लेखक ने मुस्लिम समाज की पीड़ा को अपने उपन्यास में व्यक्त किया है।

सन्दर्भ-

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह, अपवित्र आख्यान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 23
2. वही, पृ. 39
3. रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद, (सं॰) डॉ॰ जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ. 71
4. अपवित्र आख्यान, पृ. 36
5. वही, पृ. 113
6. वही, पृ. 101
7. वही, पृ. 57

शेष पृ. 31 पर .....

शोध आलेख

प्रेमचन्द की कहानियों में मनोवैज्ञानिक संदर्भ

भारती

प्रेमचंद की कहानियों को यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो उनकी तकरीबन समस्त कहानियों में मनोवैज्ञानिकता स्पष्ट झलकती है। उनकी कहानियों में बाल-मनोविज्ञान, नारी-मनोविज्ञान एवं समाज-मनोविज्ञान के विविध संदर्भ दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ तक कि परवर्ती लेखकों ने भी उनके पद चिह्नों पर चलना प्रारम्भ कर दिया। उनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिक संदर्भ खोजने से पूर्व मनोविज्ञान का अर्थ समझना अप्रासंगिक न होगा। सामान्यतः मनोविज्ञान मानव मन का विज्ञान है, जो उसके व्यवहार में परिवर्तन आने पर उसकी मनः स्थिति से परिचित कराता है। मनुष्य के मन में हर समय कुछ विचार, इच्छाएँ, चेष्टाएँ और कामनाएँ उठती रहती हैं जिनकी व्याख्या मनोविज्ञान करता है। डॉ. देवराज उपाध्याय ने मनोवैज्ञानिकता के संबंध में प्रेमचन्द के विचारों को उद्धृत करते हुए लिखा है-''यो कहना चाहिये कि वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का आधार ही मनोविज्ञान है। घटनाएँ और पात्र तो उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्थिर करने के लिये ही लाये जाते हैं। उदाहरणतः मेरी सुजान भगत, मुक्ति मार्ग, पंच-परमेश्वर, शतरंज के खिलाड़ी, महातीर्थ आदि कहानियों में एक न एक मनोवैज्ञानिक रहस्य को देखने की चेष्टा की गई है।''[1] इस प्रकार प्रेमचन्द की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता को स्पष्ट देखा एवं अनुभव किया जा सकता है। प्रारम्भिक युग से लेकर विकास युग में आने तक उनकी कहानियों में मनोविज्ञान का विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है। मनोविज्ञान के महत्त्व को स्वीकारते हुए प्रेमचंद के विचारों को डॉ. सुमन कुमार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है -''सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो''[2] लोक भारती प्रामाणिक हिन्दी कोश में मनोविज्ञान को इस प्रकार परिभाषित किया गया है -''वह शास्त्र जिसमें चित्त की वृत्तियों या मन में उठने वाले विचारों आदि का विवेचन होता है।''[3] प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैकडुगल ने मनोविज्ञान को इस प्रकार परिभाषित किया है -''प्राणियों के व्यवहार व आचरण के स्वरूपात्मक विज्ञान को मनोविज्ञान कहते हैं।''[4] यूनानी दार्शनिक अरस्तु के अनुसार-''मनोविज्ञान आत्मा का विज्ञान है।''[5] टिचनर का मानना है-''मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान है।''[6] स्पष्ट है कि मनोविज्ञान द्वारा मनुष्य व अन्य प्राणियों के व्यवहार को जाना व समझा जा सकता है।

आज के समय में मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत बन गया है । इसके अध्ययन क्षेत्र में बाल, व्यक्ति, पशु, समाज, शिक्षा, औद्योगिक, अप्रकृत, अप्रकृत मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण इत्यादि विषय आते हैं जिनमें से बाल-मनोविज्ञान, विकास-मनोविज्ञान व आयु वर्ग मनोविज्ञान की उप-शाखाएँ भी शामिल है। प्रेमचन्द की कहानियों को मनोवैज्ञानिक संदर्भ के आधार पर तीन निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. बाल मनोविज्ञान संबंधी कहानियाँ
2. नारी मनोविज्ञान संबंधी कहानियाँ
3. समाज मनोविज्ञान संबंधी कहानियाँ

बाल मनोविज्ञान संबंधी कहानियाँ

बाल मनोविज्ञान से तात्पर्य बाल्यावस्था में आस-पास के अनुकूल एवं प्रतिकूल वातावरण का जो प्रभाव शिशु के मन पर पड़ता है और प्रतिक्रिया स्वरूप वह जैसा आचरण करता है उसके आचरण या वह किस प्रकार से खेलता है या सोच में डूबता है उसकी सारी हरकतों पर ध्यान रखे हुए उनका अध्ययन करना ही बाल-मनोविज्ञान कहलाता है। बचपन का यही समय बच्चों के लिए आधारशिला का कार्य करता है यही वह समय होता है जब उसे माँ-बाप के प्यार की सबसे ज्यादा ज़रूरत होती है बच्चे बहुत ही नाजुक एवं संवेदनशील प्रकृति के होते हैं और बचपन से जुड़ी यादें उनके मानस पटल पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं। वे अपने बड़ों की भाषा को सुनकर ही बोलने का प्रयास करते हैं। बच्चों के मन पर बचपन के आस-पास के वातावरण व माता-पिता के उनके प्रति व्यवहार से उनके जीवन की दिशा अचानक कहीं भी मुड़ सकती है। वे गलत राह पर भी जा सकते हैं। इसीलिए बाल मनोविज्ञान का ज्ञान बच्चे के माता-पिता को भी होना चाहिए कि उनका बच्चा किस बात पर नाराज़ व खिन्न रहता है या वह कहीं अकेला या

गुमसुम तो नहीं रहता उसके मन को समझना बहुत ज़रूरी है तभी बच्चों का सही विकास संभव है ।

प्रेमचन्द की बाल-मनोविज्ञान से सम्बन्धित कहानियाँ हैं-बन्द दरवाज़ा, नादान दोस्त, विमाता, चोरी, कप्तान साहब, ईदगाह, गुल्ली-डण्डा इत्यादि। प्रेमचन्द के स्वयं के बचपन में उनकी परिस्थिति व मन की व्यथा को उनकी लिखी इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -''ज़िन्दगी की वह उम्र जब इंसान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा ज़रूरत होती है, बचपन है। उस वक्त पौधे को तरी मिल जाय तो ज़िन्दगी भर के लिए उसकी जड़े मजबूत हो जाती हैं। उस वक्त खुराक न पाकर उसकी ज़िन्दगी खुश्क हो जाती है। मेरी माँ का उसी ज़माने में देहान्त हुआ और तब से मेरी रूह को खुराक नहीं मिली, वही भूख मेरी ज़िन्दगी है।''[7] इस प्रकार प्रेमचन्द के साहित्य में बाल-मनोविज्ञान स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनकी 'गुल्ली-डंडा' कहानी बाल मनोविज्ञान का सशक्त उदाहरण है। यह कहानी उनके बचपन की यादों से जुड़ी हुई कहानी है। इसमें गया नामक चमार एक पात्र है, जो गरीब घर का लड़का है। यह कथावाचक बड़ा होकर अपने बचपन के एक मित्र से मिलता है तो वह अपने बचपन की पुरानी यादों को याद करके कहता है -''लेकिन मुझे तुम्हारी याद आती थी। तुम्हारा वह डण्डा, जो तुमने तानकर जमाया था, याद है न ?''[8] पर अब परिस्थितियाँ बदल चुकी है। वह अफसर है लेकिन वह स्वयं एक मजदूर ! वह आखिर में कहता है -''यह अफसरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गयी है। अब मैं उसका लिहाज पा सकता हूँ , अदब पा सकता हूँ, साहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था, तब मैं उसका समकक्ष था हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।''[9] प्रेमचन्द की 'ईदगाह' कहानी भी बाल-मनोविज्ञान पर आधारित एक सशक्त कहानी है। उसका पात्र हामिद गरीब होने पर अपनी अमीना दादी के लिए मेले से चिमटा लेकर आता है, क्योंकि वह देखता है कि चिमटे के अभाव में उसकी दादी की उगलियाँ रोटी सेंकते हुए अक्सर जल जाया करती थी। जो पैसे उसकी दादी ने खिलौनों व कुछ खाने के लिये दिये थे, वह उन पैसों से चिमटा लेकर आता है। उसमें बालकत्व न होकर परिस्थितियों के कारण बड़ों जैसी सूझ-बूझ आ गई है। वह अपने बाकी मित्रों को कहता है -''खिलौना क्यों नहीं ? अभी कन्धे पर रखा, बन्दूक हो गयी। हाथ में लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ! एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाय। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगावें, वे मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है - चिमटा।''[10] इस प्रकार जब अमीना वह चिमटा देखती है तो भाव विभोर हो हामिद को दुआएँ देती व रोती जाती है। 'बड़े भाई साहब' कहानी भी बाल - मनोविज्ञान पर आधारित कहानी है, जिसमें बड़ा भाई ज़िम्मेवारियों के चलते वक़्त से पहले प्रौढ़ हो गया है जिसे घर, परिवार व अपने छोटे भाई की चिन्ता सताती है। वह इसी कारण लगातार फेल भी होता है, पर अपने छोटे भाई को उपदेश देता रहता है। आखिर में, वह अपने भाई के साथ मिलकर कनकौए उड़ाता है। वह बचपन जो कहीं खो गया था वह उसे इन पलों में संजोने का सफल प्रयास करता है। भाई साहब ने मुझे गले लगा लिया और बोले-''मैं कनकौए उड़ाने को मना नहीं करता। मेरा भी जी ललचाता है; लेकिन करूँ क्या, ... चलूँ, तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ? यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर है ! संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुज़रा। उसकी डोर लटक रही थी लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ रहा था। भाई साहब लम्बे है ही! उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा हॉस्टल की तरफ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।''[11] 'दूध का दाम' कहानी भी बाल-मनोविज्ञान से सम्बन्धित कहानी है जिसका 'मंगल' पात्र है जो मातृविहीन होने पर ठाकुर द्वारे पर जूठा खाकर बड़ा हुआ है सुरेश उसे खेलने को बुलाता है और घोड़ा बनने को कहता है पर वह इन्कार कर देता है और कहता है कि अब घोड़ा बनने की बारी मेरी नहीं तुम्हारी है और यह जो मुझे खाने को मिल रहा है वह दूध का दाम है, तूने मेरी माँ का दूध पिया है। वह बोला-''मैं कब कहता हूँ कि मैं भंगी नहीं हूँ, लेकिन तुम्हें मेरी ही माँ ने अपना दूध पिलाकर पाला है। जब तक मुझे भी करने को न मिलेगी, मैं घोड़ा न बनूँगा। तुम लोग बड़े चघड़ हो। आप तो मजे से सवारी करोगे और मैं घोड़ा ही बना रहूँ ।''[12] 'चोरी' कहानी प्रेमचन्द के बचपन की सत्य घटना पर आधारित एक मार्मिक कहानी है। उनके चाचा का बेटा हलधर और स्वयं उन्होंने पैसे की चोरी की और स्वयं को बचाने के लिए हलधर को ही उसका ज़िम्मेवार बताया-''मुँह से पूरी बात भी न निकली थी कि पिता जी का विकराल रूप धारण किये, दाँत पिसते, झपट कर उठे और हाथ उठा ये मेरी ओर चले। मैं ज़ोर से चिल्लाकर रोने लगा, ऐसा चिल्लाया कि पिता जी भी सहम गये। उनका हाथ उठा ही रह गया।''[13] यह कहानी प्रेमचंद के बचपन की स्मृतियों को प्रभावी ढंग से दर्शाती है। आखिर में वे दोनों बाहर आते हैं और इस प्रकार बातें करते हुए चलते हैं जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। 'कजाकी' कहानी प्रेमचंद के बचपन की एक अमिट स्मृति है। कजाकी एक डाकिया है, जो चिट्ठी-पत्री देने जाता है । एक दिन उसको माता द्वारा डाँटे जाने पर बालक

मन पर बुरा प्रभाव पड़ा। वह सहम गया। उसके बाद वह नहीं आया, तो वह घबरा गया। वह उन्हें कन्धे पर घुमाता था। वे एक स्थान पर कहते हैं-''बाबू जी ने कहा-''कजाकी तुम बहाल हो गये। अब कभी देर न करना। कजाकी रोता हुआ पिता जी के पैरों पर गिर पड़ा मगर शायद मेरे भाग्य में ....छूटा कजाकी आया तो मुन्नू हाथ से गया और ऐसा गया कि आज तक उसके जाने का दुख है।''[14]

नारी मनोविज्ञान संबंधी कहानियाँ

नारी मनोविज्ञान से अभिप्राय नारी के मन व मस्तिष्क में चल रहे समाज व परिस्थितियों के प्रति जो विचार चल रहा है, जिन परिस्थितियों से वह गुज़र रही है तथा जिन मुश्किलों का वह सामना कर रही है, उन परिस्थितियों के प्रति उसकी विचार-धारा, ज्ञान एवं प्रतिक्रिया ही नारी-मनोविज्ञान है। प्रेमचंद की नारी-मनोविज्ञान पर आधारित कहानियाँ हैं-कफन, खून सफेद, विमाता, शतरंज के खिलाड़ी, नैराश्य लीला, मूठ, स्वामिनी, ज्योति, अभिलाषा, आधार, प्रेम की होली, मिस पद्मा, रहस्य, वेश्या इत्यादि प्रेमचंद की उन कहानियों में नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता अविवाहित व विवाहित दोनों ही परिस्थितियों में उसे मुश्किलों में डालती है। माँ-बाप की मृत्यु के पश्चात् भाई उसकी ज़िम्मेवारी लेने से पीछे हट जाता है। कई बार तो उसके कन्धे पर घर का भार छोड़कर स्वयं विदेश चला जाता है। इन विपरीत परिस्थितियों में उस स्त्री का मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। ऐसी लड़कियाँ दोहरा जीवन जीने पर विवश हो जाती हैं। एक तरफ अपने परिवार का मोह उसे खींचता है तो दूसरी तरफ वह जीवन जीने व उसे अपने ढंग से संचालित करने के बीच द्वन्द्व में पीसती रहती है ऐसी ही नारी है। 'सुभागी' कहानी की 'सुभागी' घर बाहर की चक्की में पिसती रहती है। पूरे घर-परिवार का बोझा उठाती है। वह कहती है-''बाबूजी का काम तो धूमधाम से ही होगा अम्माँ, चाहे घर रहे या जाये। बाबूजी फिर थोड़े ही आवेंगे। मैं भैया ...देना चाहती हूँ कि अबला क्या कर सकती है।''[15] वह इन्हीं परिस्थितियों से जूझती हुई आखिर में अकेली रह जाती है। तब सज्जन सिंह उसे अपनी बहू बनने के लिए प्रार्थना करता है और वह स्वीकार कर लेती है। इसके अतिरिक्त कई सुहागिनें ऐसी हैं, जिन्हें अपने यौवनावस्था में पति का सामीप्य प्राप्त नहीं होता और उनकी मातृत्व कामना अधूरी रह जाती है। ऐसी ही कहानी है 'अन्तिम शान्ति' जिसमें सुन्नी तिरस्कृत नारी है जो अपने पति का सामीप्य चाहती है, पर वह बाज़ारू औरतों के पास जाता है जिसे वह सहन नहीं कर पाती और आत्महत्या कर लेती है। प्रेमचन्द की 'खून सफेद' कहानी में देवकी अपने मातृ हृदय से विवश है। वह बचपन में अपने खोये पुत्र को जब बड़ा देखती है, तो वह उसको अपनाना चाहती है। पर जाति-बिरादरी वाले लोग उसे दूसरी जाति में परिवर्तन हुआ जान उसके हाथ का पानी तक नहीं ग्रहण करना चाहते। इस सम्वेदनशील बिन्दु पर माता का हृदय विवश हो जाता है। एक तरफ उसका पुत्र है तो दूसरी तरफ उसके लोग। वह उसे जाने नहीं देना चाहती और कहती है-''मैंने तो तुझे छाती से दूध पिलाया है, तू मेरी थाली में खायेगा तो क्या? मेरा बेटा ही तो है, को और तो नहीं हो गया!''[16] इसी तरह 'स्वामिनी' कहानी भी नारी मनोविज्ञान का सशक्त उदाहरण है, जिसमें एक विधवा पात्र है जो पूरे घर की देख-रेख करती है और उसे सारे अधिकार प्राप्त हैं। पर जब उसे सारे छोड़कर चले जाते हैं तो उसे भी पूर्ण अधिकार है अपना जीवन जीने का और अंत में जोखू जब उसकी तारीफ करता है तो वह प्रसन्न हो जाती है। एक स्थान पर वह स्वयं कहती है-''मैं तुमसे पूछती हूँ अपनी सगाई क्यों नहीं कर लेते? अकेली मरती हूँ। तब एक से दो हो जाऊँगी?''[17] इसी प्रकार 'ज्योति' कहानी में बूटी के माध्यम से लेखक ने विधवा जीवन में विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है। उसके मन की झुंझलाहट यहाँ पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है- ''वह शायद सारे संसार की स्त्रियों को अपने ही रूप में देखना चाहती थी।''[18] 'लांछन' कहानी में नारी जीवन की विकट परिस्थितियों का उसकी मनःस्थिति पर जो प्रभाव पड़े, उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। देवी ने सजल नेत्र होकर कहा-''तुम लोगों के पीछे मुझे घर छोड़ना पड़ा। कल रात को तुम्हारा मेरे घर जाना गजब हो गया। जो कुछ होगा, वह फिर कहूँगी। मुझे कहीं एक घर दिला दो। घर ऐसा हो कि बाबू साहब को मेरा पता न मिले। नहीं तो वह मुझे ...छोड़ेंगे।''[19]

समाज मनोविज्ञान संबंधी कहानियाँ

समाज मनोविज्ञान से तात्पर्य समाज में रहने वाले लोगों की मनोभूमि से है। समाज में निवास करने वाले लोग स्वयं के बारे में तथा अन्य लोगों के बारे में भिन्न-भिन्न ढंग से सोचते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में स्वयं के बारे में सोचना, लाभ-प्राप्ति और अपना विकास करना आदि तत्त्व प्रधान होते हैं । मनुष्य स्वभाव से आत्म-परोपकारी होता है और दूसरों के बारे में उसकी सोच दूसरे दर्ज़े की होती है। हिन्दी कथाकारों ने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में समाज में रहने वाले स्त्री-पुरुषों की भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों को रेखांकित किया है। इसके मूल में उनका परिवेश तथा अनुभव अधिक कारगर रहा है। इसलिए उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में कई समाज-मनोवैज्ञानिक संदर्भ देखने को मिलते हैं। प्रेमचन्द अपने समाज की उपज थे उन्होंने

भूख, प्यास, असमानता, शोषण, अन्याय और अभावों को समझा और सहा था। इसीलिए उनके नारी और पुरुष पात्र यदि कहीं-कहीं इनका प्रतिनिधित्व करते है तो अन्य स्थानों पर वे समाज मनोविज्ञान की कसौटी पर भी उतरते हैं। अपनी बाल-मनोविज्ञान नारी-मनोविज्ञान आदि सम्बन्धी कहानियों की तरह उन्होंने समाज-मनोवैज्ञानिक संदर्भों से ओत-प्रोत की कहानियाँ लिखी हैं जिनमें मनोवृत्ति, ठाकुर का कुँआ, सद्गति, मंदिर आदि कहानियाँ प्रमुख है।

प्रेमचंद की 'मनोवृत्ति' कहानी सामाजिक मनोविज्ञान का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस कहानी में गाँधी पार्क में बिलौर के बेंच पर गहरी नींद में सोई एक नारी पायी जाती है। तरह-तरह के लोग आते हैं और उसे देख कर तरह-तरह के अनुमान लगाते है। कोई उसे वेश्या समझता है, कोई कुछ। यह कहानी पुरुष की घर की नारी व बाहर की नारी के प्रति भिन्न-भिन्न वैचारिक दृष्टि को दर्शाती है। बसंत और हाशिम दोनों में दस-दस रुपये की बाजी लगती है कि वह कुलवधू है या वेश्या। फिर एक वकील व डॉक्टर दोनों ही वृद्ध हैं, उनमें भी ये कौतूहल जागृत होता है कि वह कुलवधू है या वेश्या। वे उसके बारे में चर्चा करते हुए कहते हैं-''मेरा तो फिर से जवान होने को जी चाहता है। सच पूछो तो आजकल के जीवन में ही ज़िन्दगी की बहार है। हमारे वक्तों में तो कहीं सूरत ही नज़र न आती थी। आज तो जिधर जाओ हुस्न-ही-हुस्न के जलवे।''[20] इसके पश्चात् दो देवियाँ पार्क में आयीं। उन्होंने भी उस पर वेश्या होने का संदेह किया। उसमें से एक ने उसे जगाया तब पता चला कि वह डॉक्टर श्यामनाथ की बहू है। यहाँ पर समाज की विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियों व सोच का पता चलता है कि उनका अपनों व बाहर के लोगों के प्रति व्यवहार में क्या अन्तर है। 'ठाकुर का कुँआ' कहानी ग्रामीण समाज में निम्न जातियों के प्रति उच्च जातियों के अमानवीय व्यवहार व ब्याज लेने वाली व्यवस्था को दर्शाती है। उच्च जाति वाले निम्न जातियों के लोगों को प्रताड़ित करते हैं। गंगी व उसका बीमार पति निम्न जाति के हैं। गंगी अपने पति के लिए साफ पानी ले जाने के लिए ठाकुर के कुएँ पर जाती है -''गंगी झुकी घड़े को पकड़ कर जगत पर.... ठाकुर साहब का दरवाज़ा खोल गया। गंगी के हाथ से रस्सी छूटी। ठाकुर कौन है, कौन है ? पुकारते हुए कुएँ की तरफ आ रहे थे। गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी। घर पहुँचकर .... मुँह से लगाये वही मैला गन्दा पानी पी रहा है।''[21] 'सद्गति' कहानी भी समाज-मनोविज्ञान से सम्बन्धित है। ...चमार निम्न जाति का है, जो अपनी लड़की की शादी का मुहर्त निकालने के लिए पंडित को बुलाने जाता है। पंडित उसे लकड़ी चीरने को देता है। यह कहानी पंडित को... चमार से अपना मतलब निकालने व उसका काम करते हुए .... का मर जाने सम्बन्धी समाज-मनोविज्ञान की एक हृदयस्पर्शी कहानी है। 'मंदिर' कहानी में सुखिया चमारिन का बच्चा जियावान बीमार है। वह मनौती माँगती है जिसके बाद उसका बेटा ठीक होने लगता है तो वह मंदिर में जाकर पूजा करना चाहती है, पर उसे प्रवेश न मिलने पर और उसके बेटे के मरने पर वह बोलती है-''पापियों मेरे बच्चे के प्राण लेकर ....नहीं उसी के साथ मार डालते । मेरे छूने से ठाकुर जी को छूत लग गयी? मुझसे बनाया तो छूत नहीं लगी? लो अब कभी ठाकुर जी को छूने नहीं आऊँगी।''[22]

प्रेमचंद की कहानियों में मनोवैज्ञानिक संदर्भ यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं । उपर्युक्त विवेचन एवं विश्लेषण से स्पष्ट है कि बाल-मनोवैज्ञानिक, नारी-मनोवैज्ञानिक तथा समाज-मनोवैज्ञानिक कहानियाँ उन्हें एक कुशल मनोवैज्ञानिक सिद्ध करती हैं। प्रेमचन्द का मानव मनोविज्ञान अनुभव जन्य है। उनकी कहानियों के पुरुष पात्र प्रेमचंद के विभिन्न आयुपरक अनुभवों को चित्रित करते हैं। उनकी मनोवैज्ञानिक कहानियों ने परवर्ती कहानीकारों को गहरे में प्रभावित किया।

सन्दर्भ-

1. डॉ. देवराज उपाध्याय, आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, साहित्य, प्रा.लि. इलाहाबाद, प्र. सं. 1956, पृ. 115
2. डॉ. सुमन कुमार, आधुनिक कहानी और कहानीकार, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-6, प्र. सं. 1989, पृ. 17-18
3. डॉ. बदरीनाथ कपूर, लोक भारती प्रामाणिक हिन्दी कोश, पहली मंज़िल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, प्र. सं. 1998, पृ. 687
4. नित्यानन्द पटेल, मनोविज्ञान की रूपरेखा, लाहौर बुक शॉप, लुधियाना, प्र. सं. 1955, पृ. 7
5. डॉ. बेन्जामिन खान, मनोविज्ञान, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, प्र. सं. जून, 1970, पृ. 2
6. वही, पृ. 3
7. अमृतराय, प्रेमचंद कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, प्रेमचंद स्मृति दिवस 1962, पृ. 24
8. प्रेमचन्द, मानसरोवर-1, राजकमल प्रकाशक, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997, पृ. 156
9. वही, पृ. 159
10. वही, पृ. 40

शेष पृ. 31 पर .....

शोध आलेख

सुपर हाइवे बनाम ज़ीरो रोड

डॉ. संजीव कुमार जैन*
डॉ. वारिश जैन**

आज हम सिर्फ स्थानीय या राष्ट्रीय परिस्थितियों से ही प्रभावित नहीं होते हैं और न हमारा जीवन अपने आस-पड़ोस तक ही व्याप्त है। जीवन की परिस्थितियाँ वैश्वविक कारणों और परिणामों से जटिलतर होती जा रही है। जीवन सतह पर तैरती नौका की तरह है जो समुद्र की न केवल गहराई में होने वाली हलचलों से प्रभावित होता है, बल्कि दूरस्थ सिरे पर होने वाली हलचलों से भी डगमगाता है। सागर में कहीं भी होने वाली हलचलें सागर पर तैरने वाले सभी जहाजों और नौकाओं को प्रभावित करती हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि बड़े जहाज छोटी-मोटी हलचलों को आसानी से झेल जाते हैं, परन्तु छोटी नौकायें जल्द डगमगाने लगती हैं और डूबती जाती हैं। उनके डूबने से कोई खास हलचल सतह पर नहीं होती ये अलग बात है।

आज जब पूँजी का अविरल प्रवाह सागर के जल की तरह लहरा रहा है और उसमें रोज आने वाले ज्वार-भाटों में ही न जाने कितनी नौकायें हिचकोले खा रही हैं और कितनी रोज डूब रहीं हैं? इसका कोई लेखा-जोखा नहीं हैं, तो अब जबकि इसमें 'सुनामी' जैसी लहरें अमेरिका से उठने लगी हैं और सारा विश्व इसके दुष्परिणामों को भोगने के लिए विवश है। इस विवशता में आम आदमी की ज़िंदगी की भयावहता यदि देखनी हो तो ज़ीरो रोड में देख सकते हैं।

नासिरा शर्मा का ज़ीरो रोड भूमंडलीकरण का दुर्दांत चेहरा है। यह एक ऐसा उपन्यास है जो 21वीं सदी की सही तस्वीर पेश करता है। इसको पढ़ते हुए सिर्फ और सिर्फ मार्केज के उपन्यास 'एकान्त के सौ वर्ष' की याद ताज़ा हो उठती है। इसकी सबसे खास बात है इसका सागर की गहराई की तरह शांत और स्थिर कथानक। इसमें हलचलें तो बहुत हैं, प्रवाह भी है, मगर सतह पर सुनामी नहीं है। इसकी वजह है नासिरा जी की आम आदमी की ज़िन्दगी की गहरी समझ। आम आदमी जो कहीं का भी निवासी हो, उसके जीवन में तूफान तो बहुत आते हैं, परन्तु उसका प्रभाव सिर्फ उसके और उसके परिवार वालों पर ही होता है और यही कारण है कि वह तूफान व्यक्तिगत घटना बन कर रह जाता है, सुनामी नहीं बन पाता। नासिरा जी ने इस सच को अपनी पूरी तल्ख सच्चाई के साथ पेश किया है।

पूँजीवाद की पहचान आम आदमी की अस्मिता और अस्तित्व के संकट में दिखाई देती है। व्यक्ति जितना स्वयं से और अपनों से बेगाना होता जायेगा पूँजीवाद उतना ही सफल और सार्थक होता जायेगा। पूँजीवाद अपने विकृततम रूप में आज विद्यमान है जिसे भूमंडलीकरण का सम्मोहक नाम दिया गया है। पूँजी का भूमंडलीकरण और आम आदमी का अकेलापन, बेगानापन, व्यर्थताबोध, निराशा, हताशा और रोजी के लिए मृगमरीचिका की तरह रेगिस्तान में अंधी दौड़, इस सम्मोहक, चमकदार, सिक्के के दो पहलू हैं, परन्तु इसका सबसे बड़ा पैरोकार मीडिया इसका इस सिर्फ एक पहलू ही पेश करता है और उसे ही पूरा सच कुछ इस तरह से प्रतिपादित करता है ताकि दूसरे पहलू की ओर देखने की कोशिश भी न की जाये। नासिरा जी का यह उपन्यास इसके दूसरे पहलू को जानने, समझने और व्याख्यायित करने की सफल कोशिश है- ''हम यहाँ कैसी कैसी उम्मीदें लेकर आते हैं। मगर जब हम जाते हैं तो हमारे सूटकेसों में भले ही जो भी भरा हो हमारा वजूद खाली होता है - बिल्कुल इस बेकराँ रेगिस्तान की तरह। कभी-कभी अजीब बात सोचता हूँ। हमारे अपनों के लिए जैसे हम तेल का कुआँ हैं - जब तक एक-एक बूँद उलच न ली जाए, हम गहरे और गहरे ड्रिल किये जाते हैं और खाली होने के बाद हमें एबेंडेंट करार देकर पत्थरों से पाट दिया जाएगा।''[1] व्यक्ति के वजूद को बेकराँ रेगिस्तान की तरह बना कर सिर्फ 'तेल' की तरह ज़िंदगी को बनाने की प्रक्रिया इस विराट सभ्यता ने अनवरत चला रखी है।

आधुनिक सभ्यता के तथाकथित विकास की चरम स्थिति दुबई जैसे नगरों में देखी जा सकती है। यहीं से इस उपन्यास का कथानक उठाया गया है। विकास के पैमाने को ही विखंडित करने का प्रयास किया गया है। इस जड़ता के विकास के अन्तर्विरोध के रूप में संबंधों की चेतना की सजग और सचेत प्रतिष्ठा ज़ीरो रोड में दिखाई देती है। ''जीवन - साथी का प्यार और हमदर्दी बड़े से बड़े दुखों से मुक्ति दिला देती है। एक

स्पर्श काफी है सारे दिन की थकन उतारने के लिए। पता नहीं लोग रिश्तों को छोड़ नशे का सहारा क्यों लेते हैं।''[2]

आधुनिक सभ्यता जिसे विकास का चरम कहा जा रहा है, वह एक जीते जागते इन्सान को रेत और तेल में किस तरह तब्दील कर रही है इसके सैकड़ों प्रसंग इस उपन्यास में ज़िन्दगी की तरह बिखरे पड़े हैं। एक उदाहरण काफी होगा - ''किस्मत जब तक साथ देती है ज़िन्दगी यूँ ही चलेगी। रानो ने गहरी साँस ली। फिर उदास स्वर में बोली, जब मैं बूढ़ी हूँगी तब तक लड़कियाँ जवान हो चुकी होंगी। मेरे दो बच्चे बिना इलाज के जमीन के अन्दर सोये पड़े हैं। मेरे जानने वालों की गोदें कैसे खाली हुईं, वह सब कैसे सहा। उसने मुझे बेहिस बना दिया है। जब तुम प्यार की बातें करते हो तो मुझे आराम से ज्यादा तनाव महसूस होता है, क्योंकि यह नर्म अहसास तो मेरी ज़िन्दगी से कब का दूर चला गया है।''[3] तो क्या दिया है आज की इस सभ्यता ने? रानो जैसी लाखों स्त्रियाँ इसी तरह बेहिस होती जा रहीं हैं और प्यार के नर्म अहसास को खोती जा रहीं हैं। आखिर कौन है इनका जिम्मेदार? यह वह सभ्यता है जिसमें आदमी का आदमी से मिलना जश्न की तरह देखा जाता है - सिद्धार्थ का यह कथन ''आदमी से आदमी का मिलना वास्तव में किसी जश्न से कम नहीं होता है।''[4]

ज़ीरो रोड सुपर हाईवे संस्कृति के बरक्स एक समतल इमारत बिछाता है। सुपर हाइवे, दुबई बुर्ज और वर्ल्ड ट्रेड सेंटर जैसे किले अन्ततः उसी सामंतीय संस्कृति के आधुनिक संस्करण हैं जिनमें राजा किलों और विशाल मंदिरों का निर्माण करते थे। सिर्फ इसलिए ताकि आम आदमी पर विशालता का आतंक काबिज किया जा सके। किलों में प्रवेश की कल्पना भी आम आदमी नहीं कर सकता था। हाँ, उन्हें बनाने तक उसकी गति होती थी, इसके बाद तो वह उसके लिए डरावनी चीज़ हो जाती थी। यही कार्य आज के विकास के प्रतीक सुपर हाइवे और दुबई बुर्ज तथा वर्ल्ड ट्रेड सेंटर जैसे इमारतें कर रही हैं।

बुर्जुआ संस्कृति का सम्पूर्ण ताना-बाना इन्हीं प्रतीकों के माध्यम से बुना जा रहा है। नासिरा जी ज़ीरो रोड में इसी विकास के पैमाने पर सवाल खड़े करती हैं और उसे सवालों के कटघरे में ले आती हैं। वे यह मानती हैं कि इस विकास की अवधारणा में आम आदमी की ज़िंदगी 'रेत' के कणों का महासागर बनती जा रही है। बुर्जुआ संस्कृति के बुर्जों की ऊँचाई जितनी बढ़ती जा रही है आम आदमी का कद और वजूद उतने ही छोटे कणों में बिखरता जा रहा है। बाज़ारू संस्कृतिक की यह चमक और ऊचाइयाँ आम आदमी के लिए नहीं हैं। सिद्धार्थ अपने भाई विवेक से कहता है कि ''दुनिया चमकीली है मगर वह चमक हमारे लिए है भी और नहीं भी। उसे हम देख सकते हैं मगर उसके मालिक नहीं बन सकते।''[5] ज़ीरो रोड में नासिरा जी बुर्जुआ संस्कृति के प्रतीक दुबई के माध्यम से ऐसा आख्यान प्रस्तुत करती हैं जिसमें उस आम आदमी की जीवन गाथा है जिसकी कोई पहचान नहीं है, कोई वजूद नहीं है। वह सिर्फ ड्रिल किया जा रहा है कभी पूँजीपतियों द्वारा तो कभी अपने परिवार के द्वारा। जिस भूमंडलीकृत संस्कृति ने आम आदमी को वजूद और पहचान रहित बनने के लिए विवश किया है उसे नासिरा जी ने ''पब्लिक गार्डेननूमा अन्तर्राष्ट्रीय मंडी''[6] कहा है। इस मंडी में इन्सान का इन्सान से मिलना किसी जश्न से कम नहीं होता, क्योंकि वह 'क्रास रोड'[7] चौराहे पर से निरंतर गुज़रता है जहाँ किसी का मिलना ईश्वर के मिलने की तरह असंभव होता है। यदि आप इस मंडी में किसी से मिल लिए तो हर एक के पास ''एक दर्दनाक दास्ताँ''[8] है जो अपने अन्दर छिपाए बैठा है।

इस अन्तर्राष्ट्रीय मंडी में आदमी के पास कोई आधार नहीं है जिस पर खड़ा होकर वह अपने को स्थिर महसूस कर सके। अस्थिरता और अनिश्चतता इसकी खास पहचान है। तकनीक हो या नौकरी कोई भी पुरानी-अच्छी नहीं लगती, दोनों निरंतर बदलती रहती हैं। इसीलिए इसे 'कंडोम संस्कृति' कहा जाता है अर्थात् 'यूज एंड थ्रो।' कभी आदमी तकनीक को बदलता है तो कभी तकनीक आदमी को बदलने पर विवश कर देती है। जो नहीं बदलता वह इस मंडी में टिक नहीं सकता। उसे उठाकर फेंक दिया जायेगा अनन्त रेगिस्तान में या तेल का कुआँ बना कर निरंतर ड्रिल किया जाता रहेगा। तभी तो सिद्धार्थ कहता है- ''बड़ी उलझी है यह दुनिया, कोई रास्ता सीधा जाता ही नहीं है। कुछ दूर चलकर या बन्द गली से टकराता है या फिर रास्ता ही गुम हो जाता है। कल रात महसूस हुआ था कि पैरों के नीचे जमीन है और आज महसूस हो रहा है कि पैर फिर उखड़ गये हैं। चारों तरफ दलदल ही है।''[9] विकास की चमक के नीचे के गहन अंधकार को देखना और उसे सार्थक अभिव्यक्ति देना नासिरा जी की उपलब्धि है। इसका कथ्य इलाहाबाद से दुबई तक की ही यात्रा नहीं करता बल्कि सम्पूर्ण विश्व में ज़ीरो रोड पर बसने वालों की दर्दनाक दास्ताँ को वाणी देता है क्योंकि ''जुल्म का चेहरा हर जगह एक है, बस उसकी तीव्रता और देशकाल में थोड़ा-बहुत अन्तर किया जा सकता है।''[10] संवेदना की इस जमीं पर खड़े होकर ही इसके कथ्य को समझा जा सकता है। नासिरा जी की दृष्टि बहुत साफ है कि यह तथाकथित विकास वह दुनिया में कहीं भी हो रहा हो उसका फायदा किसे हो रहा है? और कौन इस विकास के नरमेघ यज्ञ में बलि का बकरा बना हुआ है।

''दिखावे के लिए इथोपिया में विकास योजना अपना

काम कर रही है। नयी इमारतें, नयी सड़कें बन रही हैं, क्राइम कम हो रहा है और कहवे और फूलों की तिजारत बढ़ रही है मगर लाभ कहाँ और किसको मिल रहा है। नंदी ग्राम में मुसलमान बहुल इलाका, किसानों से जमीन छीन पूँजी लगाने वाले को देने में क्या बात केवल धर्म की है? इन देशों में डेमोक्रेसी के नाम पर हुए चुनाव का क्या हुआ? जब लोग नहीं रहेंगे, ज़िंदगी नहीं रहेगी, बच्चे ज़िन्दा नहीं बचेंगे तो आपकी डेमोक्रेसी वहाँ क्या करेगी? तब समस्या खुलती है कि यह सब कुछ आप अपने लिए कर रहे हैं और कितना अजीब है हम जुल्म सहने वाले बर्बाद होने वाले किसी एक मुद्दे पर एकत्रित नहीं हो पाते हैं। उधर हमारा शोषण करने वाला कितना बड़ा घेरा बना हमको अपने ही इलाकों में बन्दीगृह में कैद कर उकसाता है कि बल्कि धर्म के नाम पर या मारो या मरो''[11]

''विकास हमेशा खुशी लेकर नहीं आता है बल्कि पुरानी आबादी के लिए दुख का कारण बनता है जिन्हें अपने इलाके, अपने घर, अपनी जमीन से गहरा जुड़ाव होता है।''[12] 'ज़ीरो रोड' जिस आदमी के मिलन, संघर्ष, जिजीविषा, कर्मशीलता का प्रतीक है वह इलाहाबाद में स्थित है, परन्तु उसका प्रतीकार्थ दुबई में साकार रूप लेता है। दुबई दुनिया का फ्री व्यापार ज़ोन है, वह अन्तर्राष्ट्रीय मंडी है, क्रास रोड है जहाँ लगभग 100 देशों के लोग बसते हैं। इनमें व्यापार के लिए पूँजीपति और उद्योगपति आते हैं। वहीं बड़ी संख्या में मजदूर और कामगार लोग भी आते हैं। वहाँ की मूल आबादी सिर्फ 20 प्रतिशत है। अरबों का भारत से संबंध बहुत पुराना है, यह सच है परन्तु आज की सच्चाई बहुत अलग है। ''अरबों का भारत से रिश्ता पुराना है जो साहित्य में मिलता है मगर दुबई से इंडिया का रिश्ता बड़ा गहरा है और नया है।''[13] इस रिश्ते की गहराई में जो खाई है उसे पहचानना और रेखांकित करने में भी नासिरा जी ने महारत दिखाई है।

''बड़े स्टेज की सबसे मामूली कठपुतली कर भी क्या सकती है? हम हालात के शिकार तो नहीं हुए मगर हालात ने हमें बनाया। दुबई में रहना, जीना, काम करना आसान नहीं है। संघर्ष की हज़ार पर्त हैं। दोबारा भारत आकर मुझे महसूस हुआ कि मेरे मम्मी और डैडी को अपने गाँव में कितना कष्ट था, जो वह अपना वतन छोड़कर बाहर गये थे। ....भूख है, बीमारी है, बेकारी है, पिछड़ापन है मगर एक संतोष है, सुरक्षा है - जो हमारे पास सब कुछ होने के बाद नहीं है। हर दम एक भय पीछा करता है कि ये सब वैसा ही जमा जमाया रहेगा .... रमेश कह उठा।''[14]

ज़ीरो रोड वास्तव में काम की तलाश में आये लोगों की जीवन गाथा है। इसकी खासियत इस बात में है कि यह पूँजीवाद का, भूमंडलीकरण का विलोम रचती है। भूमंडलीकरण के कारण अपनी जड़ों से उखड़े लोग - जिनमें सिद्धार्थ, फ़ीरोज़ मीखची, शाहआलम, बरकत उस्मान, श्रीनिवासन, गुलफाम, रानो, रशीद, सुदर्शन, फरहाम, जरयाब, रमेश और ईयाद हैं। इन सबके बीच जो इन्सानी रिश्तों का सोता फूटता है वह पूँजीवाद की तमाम पथरीली और कठोर चट्टानों का चटका देता है। इन्सान अपने अंदर के दर्द और पीड़ा को दूसरों के सामने सीधे नहीं खोलता मगर साहित्य और कला इस ज्वालामुखी को अभिव्यक्ति देने के साधन बन जाते हैं और अन्ततः सबके निजी ज्वालामुखी एक व्यापक ज्वालामुखी बन कर फूट पढ़ते हैं। 'डॉ. जिबागो' और 'आऊट और अफ्रीका' नामक फ़िल्म और कुछ उपन्यास और इलाहाबाद में मुन्ना हाफिज की किताबों की दुकान जो बाद में कट्टरपंथियों द्वारा जला दी जाती है, अन्ततः साहित्य और कला की सामाजिक भूमिका को रेखांकित करती हैं- ''सिद्धार्थ जब अपने कमरे में पहुँचा तो बाकी लोगों की तरह झुँझलाया या बेबसी से फड़फड़ा नहीं रहा था। बल्कि उसका दिमाग़ जैसे जाग उठा था। उसके अंधेरे कोने में रोशनी भर गयी थी। फ़िल्म ने सबके अन्तर्मन की भावनाओं को नोकें चुभोयी थीं। ऊपर से जो भी तल्ख बहस हुई हो, मगर सच यह था कि सभी को उनके सरोकारों और वैचारिक धरातल पर जोड़ने का काम हुआ था। उनके अन्दर की पथरीली दुनिया कई जगह से तड़की थी, जिसकी दरारों से स्वच्छ पानी बहना शुरू कर दिया था। यकीनन ये सोते इंसानी मोहब्बत के थे। एक दूसरे के दुख को स्पर्श कर उस सिहरन को महसूस करने के जो आज तक अकेले महसूस कर रहे थे।''[15] इसके पीछे जो तर्क नासिरा जी का है वह भी सांदर्भिक है - ''इंसानों द्वारा इंसानों के शोषण की कहानी जितनी पुरानी है उतनी ही पुरानी इंसान का इंसान के प्रति आकर्षण की भी। इस संसार में कितनी तरह के लोग रहते हैं। गोरे, काले, पीले, सांवले। सुन्दर कुरूप परन्तु जो चीज़ सबसे पास एक तरह की है वह है भावना। यही भावना है जो जो दो इंसानों के बीच कभी प्रेम तो कभी नफ़रत, कभी मित्रता तो कभी शत्रुता का बीज बोती है! सारा झगड़ा क्या हम इंसानों के बीच केवल सत्ता का है? महानता साबित करने का है? इस पूरी दुनिया में आज कितने तरह के मोर्चे खुले हुए हैं। क्या कहीं भी मानव सुरक्षित हैं? भय, द्वेष, घृणा, ईष्या आज के आधुनिक संसार की हस्ताक्षर लय बन चुकी है। जो बार-बार बताती है कि विजय का कोई सुख नहीं है। लेकिन इंसान इस सच को माने तब न? आज इंसान इंसानी खून सबसे तुच्छ, महत्त्वहीन और सस्ता हो गया है। पानी से भी ज्यादा सस्ता। यह केवल आर्थिक समानता की लड़ाई नहीं है कि किसके पास कितने शक्तिशाली साधन

हैं बल्कि वह महान् है जो दूसरों का हक़ छीन सकता है, वही पूजनीय है, वही तानाशाही को लोकतन्त्र का नाम दे अपने को मसीहा समझता है।''[16]

पश्चिमी सभ्यता, आधुनिक सभ्यता, गोरी सोच की सभ्यता, अमेरिकी बर्बरीय सभ्यता जिसने दुनिया को असभ्य कहकर स्वयं को सभ्य मानने के लिए विवश किया। दुनिया पर स्वयं के सभ्य होने का विचार थोपने के लिए न जाने कितने नरसंहार किये और कर रही है? बीसवीं शताब्दी जिसे सभ्यता के विकास की शताब्दी या विज्ञान के विकास की शताब्दी कहा जाता है दरअसल समय के इतिहास की सबसे अमानवीय और बर्बरता की शताब्दी भी है। विकास के बुर्ज और टॉवर वास्तविक रूप में करोड़ों मनुष्यों के माँस, मज्जा और रक्त से निर्मित है। सिद्धार्थ का यह निष्कर्ष ''यह बात तो हर फ़िल्म में उभरकर आयी थी कि पश्चिमी देशों ने किस बुरी तरह छोटे कमजोर राष्ट्रों को दोहन किया था। इसमें वे देश भी शामिल थे जिनके पास सभ्यता एवं संस्कृति का सुनहरा इतिहास है, जिन्होंने वास्तव में आज के आधुनिक संसार की नींव डाली थी। आज की तकनीक ने, खासकर खतरनाक हथियारों ने साहित्य व कला को नकार कर यह साबित करना शुरू कर दिया कि संवेदना को कोई महत्त्व दिमागी दुनिया में नहीं रह गया है। यह एक देश का विचार है जो हथियारों के कारण महान् शक्ति बन चुका है। जो बाज़ार का एक नया संसार रच रहा है। उस महाशक्ति को हराने के लिए क्या उन देशों के पास कोई मंत्र या शक्ति नहीं बची है? ये वही तो थे जिन्होंने सभ्यता के विकास में अपना योगदान दिया था। आज वह एक जुट क्यों नहीं हो पा रहे हैं? क्या अब हथियार ही विजयी होंगे? उनकी धार कोई भी देश कुन्द नहीं कर पायेगा? कितना अजीब है सब कुछ! एक तरफ खतरनाक हथियारों का अविष्कार और दूसरी ओर उन्हीं हथियारों का उन आतंकवादी घोषित किए गए देशों में बाज़ार पनपाना। ....पेचीदा सियासत है ... देशों की।''[17]

'ज़ीरो रोड' अपने प्रतीकार्थ में पूँजीवाद का विलोम और उत्तराधुनिकता का आख्यान रचती दिखाई देती है। ज़ीरो रोड पर आकर मिलने वाले तमाम इंसान इंसान पहले हैं जाति, धर्म, नस्ल, राष्ट्रीयता जैसे विभेदीकृत अवधारणाओं से मुक्त इंसान जो पूँजीवाद और उसके विकास के प्रतिमानों से उपजी रिक्तता, व्यर्थताबोध, निराशा, बेरोजगारी, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, अजनबीयत, अमानवीयता, शोषण, हिंसा और बलात्कार के बनते रेगिस्तान पर आ कर मात्र इंसान होने की पहचान बनाये रखने लिए संघर्षरत हैं।

श्रम ही वह बिन्दु है जो इन्हें आपस में जोड़ता है। यहाँ हम मार्क्स के उस कथन को याद कर सकते हैं जिसमें उन्होंने कहा था कि ''दुनिया के मजदूरों एक हो, क्योंकि तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ नहीं है और पाने के लिए सारी दुनिया।'' मार्क्स का यह दर्शन यहाँ जिन संदर्भों और स्थितियों में फलीभूत होता है, संभवतः ये वही स्थितियाँ हैं जिनकी कल्पना मार्क्स ने की होगी। इन तमाम चरित्रों के पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है, ये सब अपना सब अपना सब कुछ या तो गँवा कर आये हैं या दाँव पर लगा कर, इसलिए एक इंसानी रिश्ते में बंध जाते हैं। एक दूसरे के सुख-दुख के सहभागी होते हैं, क्योंकि ''हम आप लोगों की तरह ज्यादा कमाने की हवस में नहीं, पेट भरने की मजबूरी से आये हैं, अगर हमारे नेता एक वर्ग विशेष तक विकास, सुविधा साधनों को सीमित न रखें तो शायद ही कोई हमारे वर्ग में आकर यहाँ भटकना पसन्द...''[18]

हिन्दी में अभी जो उपन्यास लिखे जा रहे हैं, उनमें ज़ीरो रोड एक अलग तरह का उपन्यास है। रेहन पर रग्घू जैसे एकाआयामी उपन्यास की चर्चा बहुत हो रही है। मगर मुझे लगता है कि 21वीं सदी के अभी तक लिखे गए हिन्दी उपन्यासों में ज़ीरो रोड का कोई सानी नहीं है। नासिरा के 'अक्षयवट', ज़िंदा मुहावरे और कुंइयाजान जैसे उपन्यास चर्चित हो चुके हैं। ज़ीरो रोड का कथानक कई सदंर्भों में चलता है। साम्प्रदायकिता और आतंकवाद इसके मूल में है। इलाहाबाद की ज़िन्दगी, सिद्धार्थ के पिता का चरित्र परिवर्तन, हामिद की हत्या और उसकी बहन से सिद्धार्थ का प्रेम और ''मुझे बख्स दो'' के माध्यम से की गई आत्मालोचना, उसकी बहन का अस्पताल में घायलों की सेवा करना और भाई हामिद को याद करना इसकी ठेठ भारतीय जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है।

संदर्भ-

1. नासिरा शर्मा, ज़ीरो रोड, भारतीय ज्ञानपीठ, नर्द दिल्ली, पृ. 212
2. वही, पृ. 188
3. वही, पृ. 115
4. वही, पृ. 166
5. वही, पृ. 190
6. वही, पृ. 159
7. वही
8. वही, पृ. 163
9. वही, पृ. 167
10. वही, पृ. 226
11. वही, पृ. 228
12. वही, पृ. 242
13. वही, पृ. 64
14. वही, पृ. 85
15. वही, पृ. 134
16. वही, पृ. 135
17. वही
18. वही, पृ. 232

सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय संजय गाँधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंज बासौदा

****अतिथि विद्वान हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय, सांवेर, इंदौर***

शोध आलेख

नासिरा शर्मा की कहानियों में राजनीतिक बोध

यशवंती

राजनीति दिन-प्रतिदिन प्रयोग होने वाला शब्द है। वर्तमान समय में राजनीति के दर्शन हर जगह पर हो जाते है। आज हम अत्याधिक राजनीतिकरण के युग में जी रहे है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसको राजनीति पसन्द हो या न हो पर जाने-अनजाने में अपने आपको इसमें उलझा हुआ पाता है। आज के इस भौतिक युग में किसी भी मानवीय गतिविधि को राजनीति कहने का फैशन-सा बन गया है इसलिए सर्वत्र कहीं 'विश्वविद्यालय की राजनीति' तो कहीं 'खेलों की राजनीति' और 'विवादस्पद मुद्दों' आदि की राजनीति व्याप्त है। 'राजनीति' शब्द का प्रयोग लोगों ने इतना अधिक किया है कि इसके सही अर्थ को खोजना एक कठिन कार्य बन गया है, फिर भी राजनीति का अर्थ बताने का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है। डॉ. जितेन्द्र वत्स के अनुसार ''राजनीति से तात्पर्य उस शास्त्र से है जो राज्य संचालन सम्बन्धी नीतियों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह विशेषतः संविधान से सम्बन्धित होता है, जिसे किसी भी देश का संचालन कर्ता उसे जीवन में व्यवहार, रूप में परिणत करने का भरसक प्रयत्न करता है।''[1] मानक हिन्दी कोश में राजनीति का अर्थ है- ''वह नीति या पद्धति जिसके अनुसार किसी राज्य का प्रशासन किया जाता है या होता है। गुटों, वर्गों आदि की पारस्परिक स्पर्धा वाली स्वार्थपूर्ण नीति।''[2]

अंग्रेज़ी में राजनीति का अर्थ ''Political Relating to Politic''[3] होता है। ''राजनीति को अविश्वास, सन्देह आदि से जुड़े एक ऐसे दुर्वचन की भांति समझा जाने लगा है जिसमें स्वार्थ, दिखावा, छलकपट आदि की दुर्गन्ध आती है। इसलिए कुछ लोग राजनीति को 'समझौते की तकनीक' का नाम देते है तो कुछ का मत है कि ये तो 'चीज़ों को सम्भव बनाने की कला' है।[4] कुछ इसे 'शैतानों की अन्तिम शरण स्थली' मानते है। राजनीति से सम्बन्धित घटना, व्यक्ति, प्रसंग, परिणाम आदि को राजनीतिक बोध के अन्तर्गत समाहित किया जाता है। राजनीति मनुष्य जीवन से सम्बन्धित होती है। अतः उसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है - सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शिक्षा, मनोविज्ञान आदि क्षेत्र राजनीति से प्रभावित रहते है। ''राज्य की वह नीति जिसके अनुसार प्रजा का शासन तथा पालन-पोषण और अन्य राज्यों से व्यवहार है।''[5] स्पष्ट है कि राजनीति का अर्थ किसी देश में रहने वाली जनता का पालन-पोषण करना तथा उस जनता के विकास हेतु अन्य राज्यों से सम्बन्ध है। अरस्तु ने अपनी पुस्तक 'राजनीति' में कहा है कि ''मनुष्य स्वभाव तथा आवश्यकता वश एक सामाजिक प्राणी है।''[6] मनुष्य जीवन का प्रत्येक क्षेत्र राजनीति से संक्रमित हो चुका है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जिसमें राजनीति का प्रवेश नहीं हुआ है। ''हम जिस युग में रह रहे है वह राजनीति का ही युग है। हमारे दैनिक जीवन में राजनीति की व्याप्ति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि विज्ञान, साहित्य, धर्म, उद्योग, नीति, कूटनीति आदि क्षेत्रों तथा व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्वजनीय सम्बन्धों में राजनीति की पैठ हो गयी है।''[7] साहित्य भी राजनीति से अछूता नहीं रहा है। इस सन्दर्भ में डॉ. हरदयाल जी का मत है- ''कोई भी साहित्य अपनी समकालीन राजनीति से असम्पृक्त और अप्रभावित नहीं रह सकता....राजनीति अपने समय के साहित्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने का बराबर प्रयत्न करती है।''[8] अतः कहा जा सकता है कि राज्य का सुचारू रूप से संचालन करने हेतु उस राज्य का संविधान बनाया जाता है। उस संविधान की अनुपालन सही ढंग से हो इस पर शासक की दृष्टि रहती है। प्रत्येक देश की राजनीति का उद्देश्य यही होता है कि उसकी जनता अनुशासनपूर्व जीवनयापन कर स्वयं का, समाज का और राष्ट्र का विकास करे, इस प्रकार से राजनीति राज्य द्वारा बनाई गई नीति से सम्बन्धित है। किसी राष्ट्र का विकास उसकी राजनीति एवं राजनेताओं पर निर्भर करता है।

राजनेता का क्षेत्र व्यापक है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से राजनीति संबंधित दिखाई देती है। राजनीतिक बोध के अन्तर्गत देश का विभाजन, विभाजन के कारण परिणाम राजनीति द्वारा उत्पन्न साम्प्रदायिकता, साम्प्रदायिक दंगे, शोषण, अत्याचार, सत्ता प्राप्ति की लालसा में अवैध कार्य आदि का चित्रण राजनीतिक बोध के अन्तर्गत आता है। किसी सत्ता द्वारा शोषितों का विद्रोह चुनाव द्वारा गंदी राजनीति का प्रदर्शन, चुनाव में छात्रों का सहभाग, भाई-भतीजावाद, अल्पसंख्यक वर्ग

में असुरक्षा का भाव अपनी स्वार्थ में असुरक्षा का भाव, अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु फैलाए जाने वाला आतंकवाद, राजनीति द्वारा मिले अधिकारों का दुरुपयोग करना, सत्ता प्राप्ति के लिए शक्ति प्रदर्शन करना, नारे जुलूस, प्रदर्शन आन्दोलन करना तथा राजनीतिक कैदियों में सम्मिलित है, नासिरा शर्मा की कहानियों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़े हुए राजनीतिक बोध की यथा -स्थान अभिव्यक्ति हुई है। राजनीतिक बोध के विविध आयामों को नासिरा शर्मा की कहानियों में इस प्रकार से व्यक्त किया गया है -

विभाजन

भारत को 15 अगस्त 1947 को आज़ादी अवश्य मिली। लेकिन अंग्रेजों ने जाते-जाते देश का विभाजन तीन भागों में कर दिया - पूर्व पाकिस्तान, भारत और पश्चिम पाकिस्तान। अंग्रेजों ने भारत की एकता को तोड़ने के लिए हिन्दुओं के हृदय में मुसलमानों के प्रति विद्वेष और मुसलमानों के हृदय में भय का वातावरण निर्मित कर दिया। 'सरहद के इस पार' कहानी विभाजन की पीड़ा से त्रस्त है। विभाजन विषय में रेहान कहता है कि 'अंग्रेजों ने हमें फसाद की शक्ल में पाकिस्तान तोहफे में दिया है और हम इस जख़्म को कब तक जीयेंगे, पालते रहेंगे? करे भी क्या ? कर ही कुछ नहीं सकते हैं। अपाहिज जो ठहरे .....'[9] विभाजन के समय जो लोग पाकिस्तान गए उनके परिवार के कुछ सदस्य ऐसे भी थे, जो हिन्दुस्तान में रहना पसंद करते थे, वहाँ नहीं गए। 'कच्ची दीवारें' इब्ने मियाँ व उनकी पत्नी उन्हीं में से है। ''ब्याह कर वह लाहौर से इलाहाबाद आयी थी। इत्तेफाक से ससुराल वाले भी धीरे-धीरे करके पाकिस्तान चले गए। चचा को बहुत बुलाया गया, बहुत जोर दिया गया मगर वह राजी न हुए। .... चची के मायके वालों और अपने घरवालों से उन्होंने दो टूक बात की थी कि मेरा वतन हिन्दुस्तान है, हम दोनों को वहीं रहना है।''[10] देश के विभाजन के समय बड़ी मात्रा में रक्तपात हुआ जिस रेलगाड़ी में शरणार्थी आ-जा रहे थे, उन पर हमला किया गया और रेलगाड़ी में शरणार्थियों की जगह लाशें आ-जा रही थी। 'आमोख्ता' कहानी में इस रक्तपात का वर्णन किया गया है- ''रेलगड़ियों ने लाशें लाना बन्द कर दी थी और दुकानों ने आग उगलना भी, जिस्मों की राख को नालियों में बहे भी अरसा गुज़र गया था और मकानों की दीवारों पर पड़े खून के छींटे भी पुताई में अपना मुँह छुपा चुके थे।''[11] इस प्रकार यह विभाजन भारतीय राजनीति की त्रासदी बन गया है, जिसके परिणाम आज भी साम्प्रदायिक दंगों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

राजनीतिक विद्रूपता

राजनीति के क्षेत्र में कई विद्रूपताएं व्याप्त हो गई है। जिस राजनीति का उपयोग राष्ट्र के निर्माण के लिए होना चाहिए था, उसी के द्वारा राष्ट्र का शोषण होने लगा। सभी नेतागण अपनी जेबें भरने में व्यस्त हो गए। देश के सामने आए संकटों से यह कहकर हाथ छुड़ाने लगे कि इसमें पड़ौसी देश का हाथ है। राजनेता अपने देश का विकास करने की अपेक्षा विरोधी पक्ष की त्रुटियाँ गिनवाने में लीन रहते हैं। कृष्णकुमार बिस्सा जी के अनुसार- ''स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति में जो घृणित परिवेश समाहित हुए हैं, उनमें वर्तमान की भ्रष्टाचारी व्यवस्था जो राष्ट्र के विकास में बाधक सिद्ध हो रही है, आज की राजनीति में जातीयता की राजनीति, साम्प्रदायिकता की राजनीति, संस्थागत राजनीति, भाषा की राजनीति, अनुवंशिकता की राजनीति, शहरी और ग्रामीण राजनीति तथा आन्दोलनकारी नीतियाँ आज वर्तमान राजनीति को अपनी परिधि में समेटी हुई हैं। आज की राजनीति इसी परिधि के इर्द-गिर्द घूमती रहती है।''[12] 'दीवार-दर-दीवार' कहानी में राजनीतिक के उलट-फेर को दर्शाया गया है। जब राजनीति घर में प्रवेश कर जाती है तो घर के सदस्यों में मतभेद हो जाता है। ''सियासत लोगों की साँस में रच-बस गई थी। घर में जितने सदस्य होते उतने ही विचार और फिर मतभेद का होना आवश्यक था। भाई-भाई आपस में भिड़ जाते थे। हर इन्सान का अपना एक उसूल था।''[13] परिणामस्वरूप मोंहदिस आगा के परिवार में भी सत्ता के कारण दरारें पड़ जाती है। वे स्वयं ''धार्मिक यानी हिज्बउल्लाही थे, सत्तारूढ़ पार्टी के कट्टर अनुयायी थे, बेटा साम्यवादी और बेटी शैदा मुजाहिद यानी इस्लामी गुरिल्ला, जो सत्ता पार्टी की कड़ी आलोचक थी।''[14] अतः राजनीतिक विद्रूपता मोंहदिस आगा का परिवार तबाह करने में सफल रहा।

सन् 1979 में ईरानी राजनीति क्रान्ति का शिकार सबसे ज्यादा युवा पीढ़ी हुई है, 'ढांचा दहन' कहानी में अमजद आगा अपनी पुत्री के संबंध में चिंतित है। वह अपनी पत्नी से कहता है- ''आज सियासत का भूखा अजदहा जवान व खून का प्यासा है, कहाँ तक, कब तक मेहरमाह को बचाकर रखोगी? वह अजदहा जवान तन की बू सूँघता हमारे घर में भी दाखिल हो जाएगा।''[15] 'गूंगा आसमान' कहानी का फरशीद सत्ता के विरोधक अब्बास की पत्नी माहपारा को बलात् उठा लाता है। ''अब्बास खुर्रम शहर में पेट्रोल रिफाइनरी में अफसर था। शाही राज में उसे किसी चीज़ की कमी नहीं थी। वह सत्ता में खड़े लोगों का दाहिना हाथ था। इस बात का जुर्माना सरकार बदलते ही उसे देना पड़ा। उसके पकड़े जाने और फिर मार डालने के बाद फरशीद पुलिस अफसर होने के कारण, उसकी खूबसूरत

पत्नी उठाने में कामयाब हो गया।''[16] अतः सत्ता की विद्रूपता ने कई स्त्रियों का जीवन नरक बना डाला है। 2 दिसम्बर 1984 में भोपाल में गैस दुर्घटना घटित हुई। सरकार ने पीड़ितों की सहायता अनेक साधनों व अनेक माध्यमों से की, लेकिन वह सहायता लोगों तक उचित समय पर नहीं पहुँच पायी। इसी का यथार्थ चित्रण 'इब्ने मरियम' कहानी में शहला के माध्यम से किया गया है। ''इस गैस के चलते हम मुसीबतजदा और गरीब लोगों के नाम पर बड़े लोग लाखों कमा रहे हैं, मगर हमारे हाथ में धेला भी न पहुँचा। न किसी तरह की मदद, न इमदाद ... कम-से-कम डॉक्टर और अस्पताल की सहूलियत ही मिलती।''[17] सत्य तो यह है कि बहुतांश पीड़ितों को अब तक सहायता या मुआवजा नहीं मिल पाया है, उन्हें आज भी अपनी माँगों को लेकर आन्दोलन करना पड़ता है।

चुनाव

लोकतन्त्र में चुनाव का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। जनता चुनाव द्वारा अपना उम्मीदवार चुनती है ताकि उनके द्वारा चुना गया नेता जनता की समस्याओं का समाधान करेगा। चुनाव के समय विविध, राजनीतिक पार्टियाँ अपने-अपने पक्ष का प्रचार-प्रसार करती है। प्रत्येक पार्टी यह सिद्ध करने की होड़ में लगी रहती है कि उससे अच्छा, उससे अधिक जनता का विकास कोई नहीं कर सकेगा। 'गलियों के शहजादे' नामक कहानी में चुनावी उम्मीदवार जनता में अनेक वायदे करते है। यथा ''चुनाव का जोर शहर में जगह-जगह था। हर तरह के वायदे जनता से किये जा रहे थे। .....चुनाव खत्म हुआ तो नए आये नगरपालिका के उम्मीदवार की जीत में चहल-पहल रही, फिर उनको वायदा याद दिलवाया गया। विपरीत दल वालों ने विरोधी नारे लगा जुलूस निकाला। पोस्टर चिपकाए।''[18] राजनेता भरसक कोशिश कर चुनाव जीतना चाहते हैं, क्योंकि चुनाव जीतकर वे अपनी सात पीढ़ियों का भला कर देते है। 'दूसरा कबूतर' कहानी का सुल्तान अहमद एक राजनीतिक पार्टी का नेता है। वह चुनाव में हरसम्भव प्रयास कर जीतना चाहता है। उसका मत है कि ''चुनाव जीतने के बाद वह बरकत को किसी-न-किसी रूप में मजा चखा सकता है। अभी खामोश रहना ही बेहतर है। उसकी पार्टी के पावर में आने भर की देर है, सब कुछ सुधर जायेगा।''[19]

बरकत सुल्तान अहमद का दामाद है, विवाह के समय वह यह बात सबसे छुपाता है कि उसकी एक पत्नी और संतान है। जब सुल्तान अहमद को सत्य का पता चलता है तभी वह प्रतिरोध लेना चाहता है। परन्तु चुनाव होने के कारण चुप रहने में ही अपनी भलाई समझता है। यदि वह उसी समय प्रतिशोध ले लेता तो विरोधी पार्टियों को हंगामा खड़ा करने का अवसर प्राप्त हो जाता। केवल चुनाव में जीतने के लिए सुल्तान अहमद उस सत्य से अनजान बना रहता है।

आतंकवाद

यह जानकर हमें आश्चर्य होगा कि आतंकवाद भी राजनीति की उपज है। अपने अधिकारों को प्राप्त करने हेतु कुछ लोग हथियार उठा लेते है और हिंसा के मार्ग का अनुसरण करने लगते हैं। उनकी इस धारणा के पीछे कहीं-न-कहीं उन पर होने वाला अन्याय-अत्याचार छुपा रहता है। आतंकवाद की जड़ में अलगावाद की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। 'तीसरा मोर्चा' कहानी कश्मीरी समस्या पर आधारित है। रहमान इस बात से भयभीत है कि कहीं आतंकवादी उसे जबरदस्ती अपने गिरोह में शामिल न कर लें। ''बूढ़े माँ-बाप काफी दिनों से जिद बाँधे हुए थे कि इससे पहले कि सिर पर कफन बाँधे दस्ते उसे उठा ले जाएं, वह कुछ दिनों के लिए कहीं रूपोश हो जाए वरना वह भी दूसरे नौजवनों की तरह धर लिया जाएगा और गलत रास्ते पर चलने पर मजबूर हो जाएगा या फिर सुरक्षा पुलिस एवं फौज की गोली का निशान बन मर-खप जाएगा।''[20] रहमान इसी भय के कारण अपने गाँव से दूर इलाकों में कहने के लिए तत्पर हो जाता है।

'आमोख्ता' नामक कहानी में नासिरा शर्मा ने पंजाब में चल रहे आतंकवाद का चित्रण किया गया है। वीर जी ने भारत विभाजन व पंजाब में चल रहे आतंकवाद की पीड़ा को भोगा है। इस आतंकवाद के कारण अमृतसर में उनका घर तबाह हो गया है- ''मकान जलकर कोयला हो गया था। ..... पत्नी सावित्री इकलौता बेटा अमन, बहू मनजीत कौर और छोटी दोनों बेटियों- पिंकी और डॉली की लाशें विभिन्न कमरों में जली पड़ी थी।''[21] इस आपाधापी में उनका पोता बबलू बच जाता है। वीर जी उसे शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश भेजते है, ताकि आतंकवाद से वह दूर रहे। किन्तु ''पंजाब नहीं पूरा देश आतंक की चादर तले आ गया है। .... इस देश में सब विभिन्न धर्म, जाति वर्ग समुदाय में बँटे हुए है, सब एक-दूसरे को नोच रहे है, खसोट रहे हैं, कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी का संबंधी नहीं है। बस, एक अल्पसंख्यक वर्ग ज़रूर खुश है। मस्त है जिसका नाम राजनीतिक है, जो बेपेंदी के लोटे होते है, जो देशी-विदेशी कुछ नहीं होते हैं। बस, अपने लोभ में वे मानव-तन का सौदा करते रहते है। तभी बड़ी आसानी से घरों के दालान-कमरे बँट जाने पर, ये दूसरों के दुख पर अपनी सत्ता का झंडा गाड़ते है।''[22]

युद्ध

नासिरा शर्मा की कहानियों में भारत-पाकिस्तान युद्ध, ईरान-इराक युद्ध की अभिव्यक्ति हुई है। लेखिका का मत है कि युद्ध का परिणाम किसी के लिए भी लाभदायक नहीं होता है। युद्ध में सम्मिलित सभी राष्ट्रों को इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं- ''आज पूरा विश्व अशान्त है। लगातार कुछ देश युद्धरत हैं। आतंकवाद, असंतोष, असहिष्णुता, अपमान, अमानवीय का भूकम्प पूरे संसार को झंझोड़ रहा है।''[23] 'पुल-ए-सरात' कहानी की लैला इराक वासी है। उसका प्रेमी इसन ईरानी युवक है। इराक-ईरान युद्ध के चलते वह लैला का साथ छोड़ ''ईरानी इस्लामी फौज में भरती हो गया है और किसी दिन बड़ी शान से हाकिम की तरह इराक की धरती पर मुझसे (लैला से) मिलने आएगा।''[24] युद्ध प्रारम्भ हो चुका है। ''एकाएक रात का सन्नाटा बम के तेज़ धमाके से टूटा। लैला ने अपने कान बन्द कर लिए। लाल रोशनी का पहाड़ शहर के अँधेरे को चीरता हुआ आसमान से बातें करने लगा।''[25] युद्ध के कारण आम आदमी का जीवन दूभर हो जाता है, ''बाज़ार में आलू, प्याज भी कभी-कभी महीना-दो महीना नज़र नहीं आते थे। इस लड़ाई ने तो आम आदमी की ज़िन्दगी मौत से बदतर कर दी है। सीरिया ने पाइपलाइन बन्द करके पेट्रोल का निर्यात ही समाप्त कर दिया है। ऊपर से पानी बन्द करके कितने देहातियों को प्यासा रखा। उनकी फसलें सूख गई। अब दवा की कमी से लोग मरेंगे।''[26] ईरानी युद्ध के दौरान अन्य अरब देशों ने इराक से अपने संबंध तोड़ लिए है। ''युद्ध जारी है। जवान तेज़ी से काम आ रहे है। हज़ारों की तादाद में हर महीनें जगहें खाली हो रही है।.... इस ईरान-इराक युद्ध ने सबके चेहरों को नंगा कर दिया। सीरिया को देखों, कैसे तेवर बदल दिए है अपने। चौदह साल नजफ की मेहमानदारी किस काम आई? आज वही मेहमान हमारा दुश्मन बन गया है और उसी दुश्मन का दोस्त यह लीबिया बन बैठा है।''[27] इस प्रकार से युद्ध में सदैव हानि ही होती है, चाहे विजय किसी भी पक्ष में हो।

इस प्रकार हम कह सकते है कि नासिरा शर्मा की कहानियों में राजनीतिक बोध के विविध आयामों की अभिव्यक्ति हुई है। नासिरा जी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त राजनीतिक बोध का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। वे स्वयं पत्रकारिता से जुड़ी होने के कारण राजनीति की गहराई से परिचित है, उनकी कहानियों में राजनीतिक बोध की यथा- स्थान अभिव्यक्ति हुई है।

सन्दर्भ-

1. डॉ. जितेन्द्र वत्स, साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना, पृ. 13
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मानक हिन्दी कोश, पृ. 494
3. एस.एस. अवस्थी, राजनीति सिद्धान्त, पृ. 28
4. वही, पृ. 28
5. नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ. 1169
6. एम.एम. शर्मा/गुलशन राय, राजनीति शास्त्र के सिद्धान्त, पृ. 2
7. कृष्ण कुमार बिस्सा चन्द्र, साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, पृ. 153
8. डॉ. हरदयाल, साहित्य और सामाजिक मूल्य, पृ. 37
9. नासिरा शर्मा, पत्थर की गली (सरहद के इस पार), पृ. 38
10. नासिरा शर्मा, (कच्ची दीवार), पृ. 131
11. नासिरा शर्मा, इब्ने मरियम, (आमोख्ता), पृ. 11
12. कृष्णकुमार बिस्सा 'चन्द्र', साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, पृ. 153
13. नासिरा शर्मा, संगसार (दीवार-दर-दीवार), पृ. 34
14. वही, पृ. 34
15. नासिरा शर्मा, संगसार (दीवार-दर-दीवार), पृ. 43
16. नासिरा शर्मा, संगसार (गूंगा आसमान), पृ. 147
17. नासिरा शर्मा, इब्ने मरियम, पृ. 145
18. नासिरा शर्मा, बुतखाना (गलियों के शहजादे), पृ. 135-136
19. वही, खुदा की वापसी (दूसरा कबूतर), पृ. 133
20. नासिरा शर्मा, इब्ने मरियम, पृ. 63
21. वही, आमोख्ता, पृ. 16
22. वही, पृ. 19
23. नासिरा शर्मा, राष्ट्र और मुसलमान, पृ. 15
24. नासिरा शर्मा, इब्ने मरियम (पुल-ए-सरात), पृ. 110
25. वही, पृ. 111
26. वही, पृ. 112
27. वही, पृ. 107

शोध आलेख

चन्द्रकान्त देवताले कृत 'पत्थर फेंक रहा हूँ' में व्याप्त समाज

कमल

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका अस्तित्व पूर्णतया समाज पर निर्भर करता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में उसकी अनेक आवश्यकताएँ हैं, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह दूसरों से सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करता है। जिनसे वह सहयोग प्राप्त करता है, उनकी भी अपनी आवश्यकताएँ होती हैं। वे भी अपने लिए दूसरों के सहयोग की अपेक्षा करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि किसी भी प्राणी को जीवित रहने के लिए एक-दूसरे के सहयोग की आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष-परोक्ष सम्बन्धों का ताना-बाना मनुष्य के चारों ओर छाया रहता है। सम्बन्धों के इस ताने-बाने अथवा जाल को समाज कहते हैं।

सामाजिक आवश्यकताएँ ही सामाजिक सम्बन्धों की जननी है, जिनकी व्यक्ति के बिना कल्पना भी नहीं कर सकते। आवश्यकताओं के साथ-साथ व्यक्ति के स्वार्थ भी जुड़ जाते हैं और धीरे-धीरे अच्छे-बुरे, खट्टे-मीठे, तीखे सम्बन्धों का जाल बनता चला जाता है। इसी को समाज कहा जाता है। राइट के अनुसार - ''मनुष्य के समूह को समाज नहीं कहा जाता अपितु समूह के अन्तर्गत व्यक्तियों के सम्बन्धों की व्यवस्था का नाम समाज है।''[1]

विदेशी विचारक रेयुटर के अनुसार ''जिस प्रकार जीवन एक वस्तु नहीं बल्कि जीवित रहने की एक प्रक्रिया है। उल्लेखनीय है कि यहाँ सम्बन्धों से अभिप्राय मानव-सम्बन्धों से है।''[2]

कवि की कविता हमारे समय का ऐसा संघनित दस्तावेज है कि केवल उसके आधार पर हम समकालीन भारत का एक दृश्य-लेख बना सकते हैं। यहाँ इतने प्रसंग, पात्र और राजनीतिक सामाजिक उद्वेलन हैं कि उनकी कविता जीवन के उन तंतुओं की खोज करती है जहाँ उन उद्वेलनों का कंपन सबसे तीव्र है और उन लोगों का यशोगान करती है जो निरंतर संघर्ष करते हुए जीवन को बदलने का ताब रखते हैं। उनकी कविता साहस के साथ सत्ता के सभी पायदानों पर वार करती हुई एक विराट सत्ता जो अर्थ व्यवस्था से लेकर हमारी रसोई तक व्याप्त है। चन्द्रकान्त देवताले एक जनवादी कवि हैं। 90 के बाद का भारतीय परिदृश्य हम उनकी कविताओं में पाते हैं। ये विशेषताएं ही कवि को एवं उसकी कविताओं को लोकप्रिय बनाती हैं, जिनका वर्णन हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से कर सकते हैं- कविवर चन्द्रकान्त देवताले के काव्य में सामाजिकता का व्यापक स्वरूप दिखाई देता है। कवि ने अपने काव्य के माध्यम से आधुनिक जीवन एवं आमजन की स्थिति का बड़ा सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। 'मुठभेड़ झक्की आदमी से' नामक कविता में कवि आम मजदूरों की यथास्थिति को आरेखित करते हुये लिखते हैं-''सत्तर प्रतिशत से अधिक धरती/यानी गरीबों के मुकद्दर पर/कूड़ा-कर्कट-कचरा फेंकने वाले/मना रहे हैं बस्ती को अगाड़ी करने का महोत्सव/और बजट तैयारी और सपने दिखाने के दौरान ही/चमकती पर पोत कर डामर काट रहे हैं चाँदी के पहाड़''[3]

कविता जब तक जन पीड़ा को व्यक्त नहीं करती है तब तक वह नये समाज की रचना नहीं कर सकती है। इस पीड़ा का कवि की कविता में चित्रण हुआ है। आज सामान्य जन की कोई हैसियत नहीं, उसके सुख-दुख से केवल उच्चवर्ग सहानुभूति मात्र रखता है। इसलिए कवि की तड़प वाजिब है। कवि की कलम आमजन की अभावग्रस्त ज़िन्दगी का बड़ा ही मार्मिक चित्र पेश करती है-''मुझे चक्कर आने लगे हैं/गरीब दुनिया के गन्दगी से पटे/विशाल दरिद्र मीना बाज़ार का सर्वे करते हुए''[4]

क्योंकि इन्होंने ही आमजन को इस स्थिति तक पहुँचाया है। आज जन-जीवन अस्त-व्यस्त है और सब कुछ नष्ट-प्रायः है-''सिंगापुर जैसा बनाने को बेताब/चाहते बन जाये हवाई पट्टी/सड़के कांच के पत्थरों वाली/पर्यटकों के लिए सितारा होटलें/कारें ठण्डी और महाहाट में भव्य जुआघर''[5]

कवि देखता है कि बहुत कम लोग सुख भोग रहे हैं। आज के वातावरण में आमजन की पहचान ही गायब हो गई है। आज व्यक्ति धर्म, वर्ग से ही अधिक पहचाने जाने लगा है। ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर कवि विवेच्य काव्य में ढूँढ़ता है। आज पगड़ी, टोपी, कुर्सी और गाड़ी से व्यक्ति की पहचान बनती है, किन्तु जिस जन के पास ये सब चीज़ें नहीं होगी उसी को पहचाने के लिए लड़ना पड़ता है। ऐसे दुनिया सिर्फ गरीब,

लाचारों की होती है। चन्द्रकान्त ने स्वयं माना है कि उनकी अभिव्यक्ति आम आदमी की मिली-जुली अभिव्यक्ति है। यद्यपि उनका आम आदमी से अभिप्राय समाज से है तथापि उनका विश्वास है कि आम आदमी अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के उत्थान के बिना सामाजिक उत्थान संभव नहीं। जन-जन की क्रांति से ही सामाजिक क्रांति संभव है। लेकिन आज हमारा समाज दूसरी ही दशा में जा रहा है-अपने मुनाफे के लिए महाजनों का हितैषी/मंडियों को आज़ाद करने वाला/अब हमारी आज़ादी में नये प्राण फूँकने आ रहा है/उसके अभिनन्दन में सजा दो संसद और फूलों से पाट दो बड़े/बाज़ारों को/हाँ अधपेट खाए रबते-खटते लोगों/जूठन बटोरते बच्चों/और अन्नदाताओं की आत्महत्याओं पर''[6]

चन्द्रकान्त देवताले ने अपने काव्य द्वारा सामाजिक समता और सद्भाव का संदेश दिया है। क्योंकि कवि ने वर्तमान परिवेश का बड़ी बारीकी से निरीक्षण-परीक्षण किया है। जिसे देख कवि का हृदय व्याकुल हो उठा। आज़ादी के इतने वर्ष बाद भी हमारे समाज को खण्डित करने वाली ताकत विद्यमान है-''पर इस वक्त इतना उजाला/इतनी आँख-फोड़ चकाचौंध/दुश्मनों के फरेबों में फँसी पत्थर भूख/नन्हीं की जय-जयकार में शामिल''[7]

अर्थात् 65 वर्षों की आज़ादी में भी हमारे सामने वही विकृतियाँ हैं जो कभी आज़ादी से पहले थी। अर्थात् आज भी हम जाति, धर्म, सम्प्रदाय के नाम पर लड़ रहे हैं। जब तक हमारी मानसिकता संकीर्ण बनी रहेगी, तब तक हम सम्पूर्ण आज़ादी के स्वप्न को नहीं पा सकते और न ही सामाजिक समता एवं सद्भाव को स्थापित कर सकते। आज भी मानव-मानव के मध्य धर्म, सम्प्रदाय की दीवार खड़ी है जो हमें एक नहीं होने दे रही है और यही दीवार हमारी सामाजिक समता एवं सद्भाव के लिए घातक सिद्ध हो रही है। 'फादर शलप्पा' नामक कविता में कवि ने उपर्युक्त विकृतियों को वाणी देते हुये आमजन को अप्रत्यक्ष रूप से यही संदेश दिया है कि जब तक जाति, धर्म, सम्प्रदाय के नाम पर मानवता खूनी खेल खेलती रहेगी तब तक हम विश्व-मानवीय एकता का स्वप्न साकार नहीं कर सकते। इसलिए कवि बड़े विद्रोही स्वर में स्पष्ट चेतावनी देता हुआ कहता है-''धर्म की गुफाओं में रहने वाले/आस-पास के लोग/मच्छरों के आदिवासी साम्राज्य में/क्या गरज अड़ी-पड़ी थी/जो समुन्दर पार आ कर बसाए/प्रभु की बस्ती वहाँ कोई ग्लेच्छ''[8]

इस तरह कवि ने आधुनिक मानव के व्यक्तित्व तथा विघटित समाज का स्पष्ट चित्रांकन किया है। इस वैज्ञानिक युग में जब यंत्र चालित मौलिकता संपूर्ण मानवीय और आध्यात्मिक मूल्यों को विनष्ट करने के लिए खड़ी है। सद्भाव एवं विश्व-एकता की समस्या हमारी ही नहीं वैश्विक समस्या है। जाति-धर्म, सम्प्रदाय आदि सामाजिक विकृतियों ने सम्पूर्ण भारतीय एकता को दुविधाग्रस्त करके सम्पूर्ण समाज को खंडित बना दिया है।

कविवर चन्द्रकान्त देवताले अपने काव्य के माध्यम से दीन-हीन, दुःखी, दलित, शोषित, उपेक्षित लोगों की दशा व दिशा का भी चित्रण किया है। तत्कालीन समाज में मजदूर व किसान की विवशता, असहायता आदि का भी वर्णन किया है। जिस प्रकार समाज का दीन-हीन वर्ग सम्पन्न वर्ग द्वारा और भी दीन-हीन बना दिया जाता है। इसका बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है। कवि ने अपने काव्य के माध्यम से उस सामाजिक विषमताओं को व सामाजिक परंपराओं को धिक्कारा है जो बेबस, विवश, लाचार व असहाय लोगों को दीन-हीन बना देती है। सामाजिक विद्रूपताओं के बारे में कवि कहता है-''इत्ते में लड़की आयी फिर से चाल में/गरीबों की दुर्दशा बताते-दिखाते पूछ रही/एक खाए-पीए-अघाए नेता से/''ऐसे सड़े अनाज को बाँटने के बारे में/क्या कहने है आपका?''/मुँह में ठसे बीड़े को सम्भालते कई नेताजी-/''झूठ है यह बकवास हमारी कामयाब/सरकार की छबि बिगाड़ने की साजिश''[9]

भारत जब आज़ाद हुआ था तो आमजन ने राहत की साँस ली थी, क्योंकि उन्हें लगता था कि अब उनके दिन ज़रूर बदलेंगे। परन्तु हमने राजनीतिक आज़ादी तो पायी, पर आर्थिक और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की आज़ादी से वंचित रहे। कल्याणकारी राज्य की कल्पना, नेताओं द्वारा स्वस्थ शासन देने और समाजवाद लाने के लिये किये गये वादों को भुला दिया गया। आज़ादी के बाद फर्क़ सिर्फ इतना आया किय हम भारतीय विदेशियों के चुंगल से तो मुक्त हो गये, लेकिन पूंजीपतियों की गिरफ़्त में आ गये अर्थात् हम आज़ाद नहीं हुये, बल्कि भारत में ही उच्चवर्ग के गुलाम बन गये-लिखूँगा यह दुनिया का सबसे बड़ा/चमकदार जनतन्त्र है/जिसमें सिर्फ जनता का नामोनिशान नहीं/होती तो दगाबाज़ जनसेवकों पर गुर्राती-झपटती''[10]

कवि चन्द्रकान्त देवताले ने अपने काव्य-संग्रह 'पत्थर फेंक रहा हूँ' में विस्थापन से उत्पन्न भयावह परिस्थितियों को बड़ी बारीकी से विवेचित कर वर्तमान विकास नीति की कड़े शब्दों में भर्त्सना की है।

तो दूसरी तरफ भौतिकता इतनी हावी हो गई है कि लोग केवल अपने तक ही सीमित हो चुके हैं। चारों तरफ बाज़ार का आक्रमण हो रहा है जिसमें आमजन अपनों से ही अलग हो चुकी है। वर्तमान इस विडम्बना से कवि अत्यन्त आहत दिखाई देते हैं। सरकार नई-नई विकास नीतियों से सब्जबाग दिखा

आमजनों को उनकी सभ्यता-संस्कृति से बेदखल कर रही है। विकास के नाम पर किसानों, मजदूरों को बेघर कर रही है। कवि ने लिखा भी है-''बसाने के बदले उजाड़ने की इस क्रूरता को/रचते हुए कितना कुछ टूट रहा है भीतर-ही-भीतर/और आसपास की दुनिया में कोई फर्क नहीं पड़ रहा''[11]

अर्थात् बसाने की जगह सरकार किसानों एवं मजदूरों को बेघर कर रही है। बेघर करने के बाद सरकार उनकी तरफ देखती भी नहीं। जबकि कागज़ों में उनके लिए तरह-तरह की आवासीय योजनाएं बनाती है। परंतु लागू होते-होते विस्थापित परिवार अपने जड़ों से ही कट जाते है। अगर कोई इनके (सरकार) विरूद्ध बोलने की कोशिश करता है तो तन्त्र उन पर लाठीचार्ज कर उनकी जुबान को दबा देता है। कवि लिखता भी है-''विस्थापन की कार्रवाई/ऐसे ही दुशचक्र में फँसी सतायी आयी हुई थीं/झुण्ड-की-झुण्ड औरतें/जिनकी आवाज़ को धकिया रही थीं पुलिस की लाठियाँ/उनकी तरफ बढ़े-बढ़े''[12]

अर्थात् सरकार को विस्थापितों की पीड़ा से कोई लेना-देना नहीं। वह तो संस्कृति के नाम पर, विकास के नाम पर योजनाओं पर योजनाएं बनाती रहती है। इस तरह कवि ने विस्थापितों की पीड़ा को बड़े यथार्थ ढंग से व्यक्त किया है।

कवि की कविता के पठन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि के मन में ग्रामीण संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति कितना लगाव है। कवि ने अपनी कविताओं में ग्रामीणों के सुख-दुःख, आशा-आकांक्षाओं को बड़ी बारीकी से पहचानते हुये उन्हें बड़े यथार्थ ढंग से रूपायित भी किया है। गाँव की सुंदरता, इसमें रहने वाले लोगों की दिनचर्या का कवि ने बड़ी बारीकी से वर्णन किया है।

'यदि हम याद कर सकते कोख में बीता जीवन' नामक कविता में कवि ग्रामीण परिवेश का चित्र खींचते हुए लिखते हैं-''हममें से कई कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाते हैं/टपने पुराने घरों, गाँवों-खेतों की पगडण्डियों से निकल कर/ळम स्कूलों, किताबों, शहरों से होते हुए/पहुँच जाते हैं ऐसे मुकाम तक/कि अचरज होता है अपने आप पर/कहाँ थे कहाँ आ गये/थोड़े से अदल-बदल''[13]

इस तरह कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से ग्रामीण संस्कृति एवं सभ्यता की बड़ी बारीकी से जाँच की है और इनके (ग्रामीणों के संदर्भ में) रहन-सहन, खान-पान और परिश्रमशीलता के प्रति भयावह स्थिति को भी उजागर किया है अर्थात् जिस प्रकार हमारी व्यवस्था अब भी ग्रामीणों के प्रति असंवेदनशील बनी हुई है। क्योंकि आज भी हमारी सरकार किसानों के विकास पर चिन्तित नहीं है और अब भी किसान होरी की तरह शोषण का शिकार हो रहे हैं। इसी पीड़ी को व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं-''तहस-नहस कर दी गई उसकी झोंपड़ी/चिथड़ों-बरतन-भाँड़ों समेत/बेदखल कर दी गई जो विधवा/डरते-कँपते अधनंगे तीनों बच्चे खड़े/तकते उसे जैसे वह कोई खौफनाक दृश्य''[14]

आज का संसार इस दौर से गुज़र रहा है कि मनुष्य मात्र मशीन हो गया है। वह केवल स्वयं तक सीमित हो गया है। सत्य बेमानी लगने लगा है। आपसी स्नेह, प्रेम, त्याग जैसी भावनाएँ आज के मनुष्य के व्यक्तित्व से समाप्त हो चुकी हैं अर्थात् आज का मनुष्य भौतिकता से इतना प्रभावित और आतंकित हो चुका है कि उसके लिए पारिवारिक स्नेह बेमानी हो गया है। इन्हीं स्थितियों को कवि 'कनॉट प्लेस' नामक कविता के माध्यम से आरेखित करते हुए कहते भी हैं।

वर्तमान समाज में हमारी सांस्कृतिक भव्यता का भी लोप हो चुका है। क्योंकि उदारीकरण ने पूरी दुनिया को बाज़ार में तब्दील करके रख दिया है। जिससे पारिवारिक रिश्ते-नाते सब टूट कर बिखर चुके हैं। इसी बात को कवि ने अपनी कविता 'कठफोड़वा' में आरेखित करते हुए लिखा है-''सचमुच अंधेरा बढ़ता जा रहा है/सब कुछ खत्म कर देने वाली हवाओं के बीच/किसी को पुकारती चीख रही है कोई चीख/जो बरदाश्त नहीं कर पा रही/कस्बे के जीवन की हत्या/हालाँकि कहीं भी हमलावर नज़र नहीं आ रहा/अलबत्ता मँडरा रहे हैं गिद्धों की तरह मददगार/जो किसी मसरफ के नहीं''[15]

कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से ऐसे लोकतंत्र और शासन का चित्रण किया जिसमें लोगों की दुर्दशापूर्ण स्थिति है। शासन के प्रति कवि का नकारात्मक दृष्टिकोण है। कवि ने अपने गुस्से और असंतोष को रचनात्मक आधार दिया है।

कवि की नज़र में सरकार केवल योजनाएँ बनाती है उसका सही ढंग से कार्यान्वयन नहीं करती। जबकि आम जनता इससे आतंकित हो रही है, अगर कोई बड़ी घटना घट जाती है तो हमारे राजनेता इसको ईश्वर की मर्जी बताकर आमजन को गुमराह करने लगते हैं।

कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से वर्तमान सभ्यता का बड़ी बारीकी से विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत किया है। समाज में प्रचलित आर्थिक विपन्नता, भौतिक विलासिता, सांस्कृतिक विघटन आदि सभी विषयों को उठाते हुये कवि ने अपनी कविताओं द्वारा व्यापक स्तर पर जाँच पड़ताल की है। वर्तमान युग भौतिकता से इतना प्रभावित हो चुका है कि इसमें रहने वाले मनुष्य मात्र मशीन बन चुके है और समाज की जगह भौतिकता को इन्होंने अपना आँचल बना लिया है। पैसे का प्रभाव इस कदर बढ़ गया है कि व्यक्ति स्वयं तक ही सीमित

शेष पृ. 37 पर....

शोध आलेख

रैदास के साहित्य में लोकमंगल की भावना : एक अध्ययन

दुर्गा खत्री

भारतीय इतिहास में मध्यकाल का समय बहुत ही संकट व समस्या से भरा था। ''तत्कालीन समय में चारों ओर से भारतीय जनता को आक्रमणों का सामना करना पड़ रहा था एवं भारतीय जनता अपनी एकता के अभाव में थोड़े से विदेशी आक्रमणों का सामना नहीं कर सकी तो इसे लोगों ने भगवान का अभिशाप समझ कर सहन करने में भलाई समझी। ऐसी विकट परिस्थिति में भक्ति आंदोलन का श्रीगणेश हुआ।''[1] जिसका संचालन संतो ने किया। जिनमें प्रमुख रूप से गुरुनानक, देव, कबीर, रामकृष्ण परमहंस, दादू, रैदास, तुलसीदास आदि संतो का नाम लिया जा सकता है। संत साहित्यकालीन भारत में मुसलमानों का शासन था। समाज में उच्च वर्ग के लोगों द्वारा निम्न वर्ग के लोगों को पीड़ित किया जा रहा था। इस समय समाज में ऊँच-नीच भेदभाव, छूत-अछूत, जाति-पाति एवं वर्ग विभाजन, आडंबरप्रियता, मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, तीर्थयात्रा आदि का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। ऐसे हालात में संतो ने भक्ति के साथ-साथ हालातों से जूझने की शक्ति अपने प्रवचनों व काव्यों में दी।

भक्तिकालीन निर्गुण संत कवियों में स्वांतः सुखाय की अपेक्षा लोकहिताय की भावना अधिक मात्रा में देखने को मिलती है। संत काव्य में न ही किसी भौतिक उन्नति को उत्पन्न करने की कामना है न ही किसी आश्रयदाता राजा को प्रसन्न करने की कामना पाई गई है। इसके काव्य की मूल प्रेरणा लोकमंगल भावना ही रही है। लोकमंगल भावना के लिए समत्व, प्रेम और त्याग की भावना अत्यंत आवश्यक है। प्राचीन काल से लोकमंगल की भावना को भारतीय कवियों ने प्रमुख स्थान दिया है। उनका मत था कि मनुष्य जब अपनी स्वार्थपरता का संपूर्ण त्याग करता तब उसमें लोककल्याण की भावना स्वयं उत्पन्न हो जाती है। लोकमंगल भावना से विश्व-बंधुत्व का विचार उमड़ पड़ता है। इसी विश्व-बंधुत्व की भावधारा से सर्वे भवंतु सुखिनः की भावना और वसुधैव कुटुंबकम् का आदर्श स्थापित हो जाता है। यही आदर्श भाव संतो के काव्य में नज़र आया और इन संतो में कवि रैदास का काव्य भी मुख्य स्थान रखता है।

रैदास संत परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थे। संत रैदास का जन्म काशी में दलित जाति परिवार में हुआ था। यह स्वयं एक दलित वर्ग के थे जिस कारण तत्कालीन समाज व्यवस्था के स्वयंभोगी थे। इसलिए उन्होंने समस्याओं के भीतर तक जाकर जनता को उन समस्याओं से बाहर आने की राह दिखाई। इस कारण रैदास ने लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर रचनाएं की। निम्न जाति के होने के कारण उस समय उनके धर्म के वातायन बंद रखे हुए थे तो भी रैदास ने निराकार निर्गुण सर्वव्यापी-परमेश्वर की उपासना करना अपना कर्त्तव्य माना और सभी धर्मों के प्रति भक्तिभाव रखा था।

वर्ण-व्यवस्था प्रत्येक सामंती समाज की विशेषता है। स्वाभवतः भारतीय वर्ण-व्यवस्था मध्यकालीन सामंती समाज की प्रमुख संचालिका रही है। आरम्भिक काल में यह व्यवस्था कर्म पर आधारित थी फिर बाद में जन्म के आधार पर मानी जाने लगी इस पर रैदासजी कहते है-''जन्म जात मत पूछिए, का जात अरू पात/रविदास पूत सब के, कोउ नहिं जात कुजात।''[2]

रैदास ने यह अनुभव किया कि जाति-पांति की खाई बहुत गहरी होती जा रही है और यह समाज का एक भयंकर रोग बनता जा रहा है यदि इस खाई को नहीं पाटा गया तो यह महारोग में परिवर्तित होकर मानवता को ही नष्ट कर देगा। इसलिए रविदास के पदों में वर्ण-व्यवस्था तथा जातिगत व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध की भावना प्रबल रूप से दृष्टिगत होती है। जब वे स्वयं को बार-बार चमार कहकर पुकारते है तब वे यह स्पष्ट करना चाहते है कि चमार होने पर कोई लज्जा या हीनता नहीं है अपितु वे अपनी जाति से उपजने वाली हीनता से सर्वथा मुक्त है वे कहते है-मेरी जाति कमीनी, पांति कमीनी, ओछा जनम हमारा, तुम सरनागत राजा रामचंद्र कहि रविदास चमारा।''[3]

रैदासजी जाति-पाति की इस व्यवस्था का विरोध करते हुए मानव की सामाजिक प्रपंचों से मुक्त करने का प्रयास किया है। उनकी इस प्रकार की जातिगत आत्मस्वीकृति से समाज को नई राह दिखाई है। परमात्मा ने उन्हें हीन जाति का होने पर भी अपनी कृपा से अनुग्रहित किया है। इस दिशा में रैदासजी का

एक आत्मकथात्मक पद है-''जाति भी ओछी पांति भी ओछी, ओछा कसब हमारा।/तुम्हारी क्रिया ते ऊँच भये है, कहे रविदास चमारा।।''[4]

संत रैदास ने जनता को सही राह दिखाने के लिए, भलाई के लिए धार्मिक एकता का आह्वान किया। वे इस संदर्भ में कहते है-''मंदिर मस्जिद दोउ एक है/इनमें अंतर नाहि।/रविदास राम रहमान का/झगइउ कोउ नाहिं।''

अर्थात् मंदिर और मस्जिद में कोई भेद नहीं है, दोनों ही भगवान की पूजा के स्थल है, इसलिए दोनों धर्म के मनुष्यों को आपस में मिलजुल कर रहना चाहिए। इसी प्रकार सांप्रदायिक झगड़ों के बारे में वे कहते है-''मुसलमान सों दोस्ती; सों कर प्रीत/रविदास जोत सम राम की/सम में अपनी मीत।''[5]

रैदासजी ने धार्मिक आडंबरों का विरोध किया और कहा कि ईश्वर प्राप्ति के अनेक रास्ते हो सकते हैं किंतु पाखण्ड करने से प्रभु की प्राप्ति नहीं होती-''माथै तिलक हाथ जयमाला/जग ठगने कुँ स्वाँग बनाया।/मारग छाड़ि कुमारग डड़कै/सांची प्रीति बिनु राम न पाया।''[6]

जनता को सही राह पर चलने के लिए संत रविदास ने मनुष्य को कर्त्तव्यनिष्ठ रहने का उपदेश दिया और कहा कि प्रामाणिकता एवं सत्यनिष्ठा से कर्म करते हुए जीवन बिताना चाहिए जैसे-''रविदास श्रम करि खाइहि,/लौ पार पसाइ।/नेक कमाई जउ करइ,/कबहुँ न निसफल जाई।''

संत रैदास मानवता के पक्षधर थे। उन्होंने कभी कठोर वचन में लोगों को भयभीत नहीं किया। अपने विरोधियों को भी सुमधुर वाणी से सम्मानित ही किया। उन्होंने सभी संकीर्ण रूढ़ियों और पाखंडों का बड़ी ही सहज, सरल और सुकोमल वाणी में बात की। उनका उद्‌बोधन वात्सल्यपूर्ण स्नेहपूर्ण और माधुर्यपूर्ण हुआ करता था। उन्होंने किसी भी व्यक्ति को दुःख न पहुँचाने की भावना से ही अपनी वाणी का विस्तार किया। शांति मार्ग से जो समाज सुधार संभव था, पीड़ित, शोषित और दलित मानवता के कल्याण के लिए अपनी सुकोमल वाणी का प्रयोग किया।

रैदास ने साम्यवादी समाज को स्वीकार किया और लोकमंगल भावना में समता भाव एक महत्त्वपूर्ण पोषक तत्त्व है। समता भाव द्वारा ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने का प्रयास किया-''ऐसा चाहो राज में, जहाँ मिले सबन को अन्न।/छोटे बड़ो सब सम बसे रैदास रहे प्रसन्न।''

रविदासजी ने वैयक्तिक स्वातंत्र्य के लिए मन में विराजमान काम, क्रोध, मद, माया को मानव को लूटने वाले तत्त्व बताये है। उनके वाणी में सामाजिक अंतर्विभाजनों, जाति-पाँति, ऊँच-नीच, ब्राह्मण, शूद्र, ठाकुर सेवक के प्रति खंडनपरक अवधारणा ज्यादा तीक्ष्ण है फिर भी मनोवृत्तियों के परिष्करण की प्रक्रिया से वे मानव को मुक्ति मार्ग पर भी प्रशस्त करते है। रविदासजी मानव-मन के व्याप्त सभी अवगुणों को दूर कर देना चाहते है। सांसारिकता विषय-वासना, मोह-माया, अहंकार आदि ऐसे तत्त्व है जो मानव चेतना को सीमित कर देते है। इन सब सीमाओं से मुक्ति ही मानव मुक्ति के द्वार खोलती है। रविदासजी कहते है कि हे मानव! तू अहंकार मत कर, यह मानव की चेतना अवरूद्ध कर देता है। काम, क्रोध, माया, मद और मत्सर इन पाँचों ने मिलकर मुझे लूट लिया है। यह मानव मन अहंकार में डूबा रहता है-''दैव संसे गाँठ न छुटे।/काम, क्रोध, माया, मद, मत्सर इन पचहु मिलि लूटै।''

संत कवि रैदास ने समर्पण के भाव को लोककल्याण के लिए सशक्त माध्यम स्वीकार किया है। भक्ति में अहं भाव तथा अपनी सीमित संबंध चेतना को इशार्पण में विलिन करते हुए मानव मुक्ति की नई दिशाएँ प्रशस्त की। परमात्मा को सर्वशक्तिमान और रक्षक माना तथा आत्म परिष्करण द्वारा समर्पण भाव के पीछे उनकी जातीय चेतना अधिक सक्रिय दिखाई देती है। इसलिए उनके समर्पण का आधार सामाजिक हो जाता है। समर्पण के माध्यम से मानों वे अपनी जातीय चेतना को विस्मृत कर देना चाहते है और परमात्मा को एक आदर्श स्वामी के रूप में परिकल्पित करते है। इसलिए रविदास की समर्पण भावना में अनुभूतिपरक गहनता अधिक है उन्हें तो स्वयं व ईश्वर में कोई अंतर ही दिखाई नहीं देता।

इस प्रकार हम कह सकते है कि संत रैदास एक समाज सुधारक थे। उन्होंने सत्य, त्याग, कर्म, मानव एक्य बोध आदि मार्ग पर चलने का आह्वान किया। हिंदू मुस्लिम एकता का संदेश देकर सभी मानव को समता और आपसी सौहार्द की शिक्षा दी थी। ये मानव एक्य बोध के प्रचारक और धार्मिक एकता के पक्षपाती रहे। जाति धर्म और समाज की विभिन्नता के कारण विछिन्न हुए भारतीय जनता को संत रैदास ने अपनी लोकमंगल की कामना से युक्त अमृतवाणी द्वारा भाईचारे और विश्वबंधुत्व का आदर्श प्रदान किया।

संदर्भ-

1. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 81
2. डॉ. प्रभुदास मित्तल, अष्टछाप परिचय, पृ. 109
3. (सं.) श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ. 34
4. वही, पृ. 34
5. रैदासजी की वाणी, पृ. 108
6. वही, पृ. 231

शोधार्थी-हिंदी विभाग, वीर नर्मद दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत

शोध आलेख

स्त्री–विमर्श : एक अध्ययन

(डॉ. राजबीर सिंह धनखड़ कृत 'जाला जीवन का' उपन्यास)

अशोक कुमार

स्त्री विमर्श को जानने से पहले विमर्श शब्द को जानना बहुत आवश्यक है। विमर्श का अर्थ है जीवन्त बहस। हिन्दी में विमर्श शब्द अंग्रेज़ी के Discourse शब्द से आया है, जिसका अर्थ है वर्ण्य विषय पर सुदीर्घ एवं गम्भीर चिन्तन। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों संस्कारों तथा वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पलट कर देखना विमर्श कहलाता है। उन्हें समग्रता में समझने की कोशिश करते हुए मानवीय सन्दर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा की जाती है। इस प्रक्रिया में निष्कर्ष अन्तिम नहीं माने जाते वरन् उन्हें समय के साथ नया स्वरूप ग्रहण करने की स्वतन्त्रता होती है। इस प्रकार स्त्री-विमर्श का अर्थ है स्त्री को केन्द्र में रखकर समाज, संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास का पुनः निरीक्षण करते हुए स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार करने की प्रक्रिया स्त्री-विमर्श, स्त्री-चेतना पर आधारित आख्यान है। चेतना एक मूल्यपरक इकाई है जो परिवेशगत दबावों से उत्पन्न होती है और अनिवार्यतः परिवेश का विखण्डन करती है। डॉ. राजबीर सिंह धनखड़ ने अपने उपन्यास 'जाला जीवन का' में स्त्री-विमर्श की अभिव्यक्ति की है।

नारी से होने वाले भेदभाव का मुख्य कारण संकीर्ण मानसिकता है। जयप्रकाश अपनी पत्नी के कहने पर अपने लड़के सुरेन्द्र को डी.ए.वी. स्कूल में दाखिला दिलवाता है और आगे चलकर अपनी लड़की कृष्णा को भी इसी स्कूल में दाखिला दिलाने की बात करता है परन्तु सरोज कहती है कि ''लड़की कृष्णा को इतने महंगे स्कूल में दाखिल करवा कर क्या करना है? उसे किसी सस्ते स्कूल में दाखिल करवा देंगे।''[1] सरोज अपनी संकीर्ण मानसिकता के कारण कृष्णा को अच्छी शिक्षा दिलाने के पक्ष में नहीं है। जयप्रकाश सरोज पर लड़के-लड़की में अन्तर करने का आरोप लगाता है तो सरोज कहती है कि ''अन्तर तो है ही लड़के के जन्मी की अपनी अलग ही खुशी होती है।''[2] डॉ. धनखड़ ने अपने उपन्यास में समाज के दोनों पक्षों नारी समर्थक तथा नारी-विरोधी का चित्रण किया है। उपन्यास की नायिका सन्तोष है, जो पढ़ी-लिखी तथा संस्कारी है। सन्तोष के माता-पिता हर कदम पर उसका साथ देते हैं। सन्तोष को खाने-पीने, पढ़ने-लिखने तथा यहाँ तक कि ट्यूशन पर लाने और ले जाने तक में भी अपने माता-पिता का भरपूर सहयोग मिलता है। सन्तोष का विवाह सुरेश से होता है जो बी.टी. अध्यापक लगा हुआ है। समस्या यहीं से शुरू होती है। विवाह के बाद सन्तोष आगे पढ़ना चाहती है परन्तु सुरेश और उसकी माँ सन्तोष को आगे नहीं पढ़ाना चाहते। सन्तोष एम. एड. करना चाहती है परन्तु सुरेश कहता है कि ''और आगे पढ़कर क्या करोगी? पहले ही तुम बहुत पढ़ चुकी हो।''[3] दरअसल समस्या एम. एड्. की पढ़ाई को लेकर नहीं अपितु एम. एड. की फीस को लेकर है। सन्तोष के पिताजी ने कोशिश करके उसका दाखिला एम.एड्. में करवा दिया। वे चाहते हैं कि एम.एड्. की फीस सन्तोष के सुसराल वाले भरे जबकि सुरेश चाहता है कि फीस सन्तोष के पिताजी भरे। सन्तोष की सास इस कार्य में आग में घी डालने का काम करती है। वह सुरेश के पिताजी से कहती है कि ''मेरी भी बात ध्यान से सुन लो कि सन्तोष का पिता इस फीस को बिल्कुल नहीं भरेगा। यह एम.एड्. की फीस तो तुम्हें ही भरनी पड़ेगी . .. क्योंकि अब उन्हें फीस भरने के लिए आप जैसे मूर्ख जो मिल गये हैं।''[4] सुरेश जब अपने ससुर को फीस भरने के लिए कहता है तो वे कहते हैं कि ''बेटा घूम-फिर कर सन्तोष का दाखिला तो मैंने करवा दिया। अब आप फीस भरवा दो। फीस भरने में मुझे क्या करना है। मैंने अभी तो सन्तोष की शादी की है।''[5] अतः मजबूर होकर सुरेश को ही फीस भरवानी पड़ती है। परन्तु फीस भरने के एवज में सुरेश सन्तोष को प्रताड़ित करने लगता है। वह सन्तोष को प्रतिदिन अपने मायके से कॉलेज जाने के लिए कहता है ''मेरी सलाह मानती हो तो अपने घर से डेली पैंसेजर हो जाओ। हमारे यहाँ से जाने से तो आपको कठिनाई होगी। आपके घर से कॉलेज नज़दीक पड़ता है।''[6] परन्तु सन्तोष सुरेश की बात नहीं मानती और अपनी ससुराल से ही कॉलेज में जाने का फैसला करती है। सन्तोष को प्रताड़ित करने के लिए उसकी सास भी अपने बेटे सुरेश को भड़काती रहती है। वह कहती है कि ''बेटा सुरेश तू तो कह रहा

था कि तुम्हारे ससुर ने यदि सन्तोष की एम.एड्. की फ़ीस नहीं भरी है तो मैं इसके बदले उन्हें आगे चलकर देख लूंगा परन्तु बेटा तूने अभी तक तो ऐसा कुछ नहीं किया।''[7] अपनी माँ के भड़काने पर सुरेश सन्तोष का कॉलेज जाना बन्द करवा देता है और कहता है कि हम तुम्हें आगे नहीं पढ़ाना चाहते परन्तु यदि तुम्हारे पिताजी तुम्हें पढ़ाना चाहते हैं तो तुम पढ़ लो। सन्तोष इस अन्याय का खुलकर विरोध करती हुई कहती है कि ''मेरे पिताजी को मुझे आगे पढ़ाने की क्या ज़रूरत है? उन्होंने तो बहुत पढ़ा-लिखा दी तथा शादी कर दी। उन्होंने तो अपनी सभी जिम्मेदारी पूरी कर दी। मेरी नौकरी लगने के बाद क्या आप मेरी तनख्वाह मेरे पिताजी को दोगे।''[8] सन्तोष के इस विरोध के बदले उसकी पिटाई होती है। सन्तोष के पिताजी कॉलेज के प्राचार्य से मिलकर उसकी हाजिरी पूरी करवाते हैं ताकि सन्तोष एम.एड्. के पेपर दे सके। सन्तोष प्रेगनेंट होने पर सुरेश से किसी अच्छे डॉक्टर से चैक करवाने के लिए कहती है परन्तु सुरेश साफ मना कर देता है। सन्तोष इस बात का विरोध करते हुए कहती है ''आप क्यों नहीं दिखवाकर लाओगे? मैं कौन-सा आपके साथ ब्याह नहीं रखी। अब पति होकर आप ही न दिखाकर लाओगे तो और दूसरा कौन दिखवा कर लावेगा।''[9] सन्तोष को जब प्रसव का दर्द होता है तो उसकी सास दाई को बुलाने के लिए कहती है परन्तु सन्तोष अपना प्रसव अस्पताल में करवाने के लिए कहती है लेकिन उसकी सास कहती है कि, ''जो लोग हस्पताल में प्रसव करवाते हैं उनके पास हस्पताल में खर्च करने के लिए अधिक पैसा होगा परन्तु हमारे पास तो इस तरह के फजूल कार्यों पर पैसा खर्च करने के लिए पैसा नहीं है। तुम तो ऐसा अहसान करके कह रही हो जैसे तुम्हारे पिताजी ने इसके लिए हमारे को चैक काटकर दे रखे हैं।''[10] इसी प्रकार सन्तोष द्वारा लड़की का जन्म दिए जाने पर उसकी सास उसे ताने देती है ''मैं तो यह पहले ही जानती थी कि इसको लड़की ही पैदा होगी ... हमारे ही कर्म फूट गये यह हमारे घर ब्याही आई। पता नहीं यह हमारे कर्मों में कहां रखी थी।''[11] सन्तोष की सास उसको प्रताड़ित करने तथा ताने देने का कोई मौका नहीं छोड़ती जबकि सन्तोष भी इस अन्याय और अत्याचार का मुखर विरोध करती है। अपने ससुराल वालों के विरोध के बावजूद सन्तोष एम.एड्. की परीक्षा पास करती है। सन्तोष नौकरी करना चाहती है परन्तु उसके सुसराल वाले उससे नौकरी नहीं करवाना चाहते। एक दिन सन्तोष का अपनी सास से झगड़ा होता है। उसकी सास अपने बेटे सुरेश को यह बात बढ़ा-चढ़ा कर बताती है। सुरेश सन्तोष को बुरी तरह से पीटती है और घर से चले जाने के लिए कहता है परन्तु सन्तोष कहती है कि ''ऐसे मैं अपने घर क्यों चली जाऊ? मैं कौन-सा यहाँ कहीं से भागकर आई हूँ। शादी करवाकर आई हूँ। मेरा तो अब यही घर है।''[12] सुरेश की पिटाई से घायल सन्तोष को उसके माता-पिता उसकी सुसराल से ले जाते हैं। सन्तोष के पिताजी उसका मैडिकल करवाकर सुरेश और उसके पिताजी के खिलाफ दहेज का मुकद्मा दर्ज करवाते हैं। कोर्ट में केस चलता रहता है। इसी दौरान सन्तोष की सोनीपत के एक कॉलेज में लेक्चरार की नौकरी लग जाती है। मुकद्में के दौरान थानेदार सुरेश के पिताजी को बताता है कि ''इस मुकद्में में तुम्हारे ही पैसे ही लग रहे हैं और तुम्हारी जेल भी होगी। तुम इस जेल से बच नहीं सकते।''[13] सुरेश को जब लगता है कि इस मुकद्में में उसकी नौकरी जायेगी और उसकी सजा होगी, तब वह अपने पिताजी से रामलाल के माध्यम से समझौता करने के लिए कहता है। रामलाल सन्तोष की तरफ से दो शर्तें रखता है समझौते के लिए ''पहली बात तो यह है राजा सिंह की लड़की सन्तोष नौकरी छोड़ने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है ... दूसरी शर्त यह है कि वह लड़की सन्तोष तुम्हारे घर पर नहीं रहेगी। वह सोनीपत ही रहेगी। सुरेश को हर रोज वहाँ पर जाना पड़ेगा।''[14] सुरेश तथा उसके परिवार को मजबूरन शर्तों के समझौता करना पड़ता है और सन्तोष अपनी शर्तें मनवाकर नारी शर्तें मनवाकर नारी सशक्तिकरण का परिचय देती है। यह सब सन्तोष के हौसले और हिम्मत के कारण हुआ। यदि वह सुरेश और उसके परिवार के अन्याय और अत्याचार के आगे घुटने टेक देती तो आत्मनिर्भर नहीं बन पाती और यह सब संभव नहीं होता।

अतः कह सकते हैं कि स्त्री-विमर्श का लक्ष्य पुरुष को परास्त करना नहीं है, बल्कि पुरुष तन्त्र का स्वस्थ विकल्प खोजना है। यह तभी संभव है जब दूसरों से उनकी और अपनी संगति में आन्नद पर आधारित संवाद और सहयोग स्थापित हो। यह कहना गलत न होगा कि स्त्री-विमर्श स्त्री एवं समाज की मुक्ति की सामूहिक चेष्टा का नाम है। डॉ. धनखड़ ने अपने उपन्यास में इसी स्त्री-विमर्श को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

सन्दर्भ-

1. डॉ. राजबीर सिंह धनखड़, जाला जीवन का, पृ. 23
2. वही, पृ. 23
3. वही, पृ. 71
4. वही, पृ. 71
5. वही, पृ. 73
6. वही, पृ.
7. वही, पृ. 74
8. वही, पृ. 75
9. वही, पृ. 79
10. वही, पृ. 81
11. वही, पृ. 82
12. वही, पृ. 96
13. वही, पृ. 118
14. वही, पृ. 136

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध आलेख

वरूण ग्रह की धरती पर : एक मूल्यांकन

डॉ. प्रदीप लाड़

जिस साहित्य में वैज्ञानिक आविष्कार होता है उस साहित्य को विज्ञान साहित्य कहा जाता है। साथ ही इस प्रकार के साहित्य में विज्ञान के नये-अनुसंधानों का व्यक्ति, समाज, जीवन और जीवन पद्धति पर होने वाले परिणामों को दर्शाया जाता है। आये दिन विज्ञान के क्षेत्र में किये जाने वाले नये अनुसंधानों का लेखा-जोखा सहज सरल भाषा में प्रस्तुत करते हुए मानव जाति और समाज पर होने वाले परिणामों का विवेचन कथा के माध्यम से प्रस्तुत करने वाला साहित्य विज्ञान साहित्य कहलाता है। विज्ञान के क्षेत्र में चलने वाली उथल-पुथल अनुसंधान हेतु बढ़ने वाला ज्ञान का विस्तार इन्हीं के फलस्वरूप विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार का मनुष्य के रोजमर्रा के जीवन पर पड़ने वाले अच्छे-बुरे परिणामों का प्रभाव विज्ञान साहित्य में दिखायी देता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के कारण मनुष्य के जीवन में अनेक परिवर्तन आये। मनुष्य की भावना तथा संवेदना भी ठूँठ होने लगी है। इसी का चित्रण किया जाता है। आज आये दिन मनुष्य को संघर्ष करना पड़ रहा है। यह विज्ञान एक ओर मनुष्य को जिलाता है। इस कल्पना शक्ति पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार पर पड़ने वाला प्रभाव विज्ञान साहित्य में अंकित किया जाता है। कहानी सुनना, सुनवाना अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है क्योंकि किस्सागोई के रूप में कही गई बात आसानी से हम समझ सकते हैं। दुनिया में एक ओर द्वंद्व और तनाव के कारण दिन-ब-दिन बढ़ते ही जा रहे हैं तो दूसरी ओर विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण का सिलसिला भी बढ़ता ही जा रहा है। क्या ऐसा हो सकता है? अगर ऐसा हो जाएगा तो दुनिया, दुनिया के लोगों पर क्या बीतेगी? क्या मनुष्य आसमानी संकटों से उबर सकता है? क्या कयामत आ जायेगी? क्या हम परग्रह पर जाकर रह सकते हैं? या फिर परलोकी जीव मनुष्य के संपर्क में आने से क्या परिणाम निकल आयेगा? क्या एलियन हम पर राज करेंगे? विज्ञान कथा इन्हीं कल्पित वैज्ञानिक खोजों को प्रस्तुत करती है।

विज्ञान कथाः संक्षिप्त इतिहास

अमेजिंग स्टोरीज (प्रथम प्रकाशन 1926) नामक पहली विज्ञान कथा पत्रिका के संपादक ह्यूगो गर्नसबैक ने सर्वप्रथम विज्ञान कथा को साहित्य की एक अलग विधा के रूप में अलग पहचान देने का प्रयास किया। दी न्यू शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी (1993) के अनुसार ''भावी वैज्ञानिक खोजों, प्रमुख पर्यावरणीय अथवा सामाजिक परिवर्तनों आदि, जिनमें प्रायः अंतरिक्ष अथवा काल-यात्रा अथवा अन्य ग्रहों पर जीवन शामिल है, पर आधारित कथा विज्ञान-कथा कहलाती है।'' विज्ञान कथा के इतिहासकार प्रायः मेरी शैली को प्रथम विज्ञान कथा लेखक और उनकी कृति फ्रेंकेंस्टीन (सन् 1818) को प्रथम विज्ञान कथा मानते हैं। अन्य उल्लेखनीय विज्ञान कथा लेखक और उनकी रचनाएँ हैं-एडवर्ड बेल्लामी (लुकिंग बैकवर्ड), जूल्स वर्न (फ्रॉम द अर्थ टु दी मून), एच. जी. वेल्स (द टाइम मशीन) आदि। वेब पर विज्ञान कथा साहित्य के अनेक स्रोत उपलब्ध हैं। कई देशों में विज्ञान कथा साहित्य के लिए राष ट्रीय पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं।"[1]

भारत में संभवतः प्रथम विज्ञान कथा जगदानंद राय द्वारा सन् 1857 में लिखी गई, लेकिन यह 1879 में प्रकाशित हुई। 'शुक्र भ्रमण' नामक यह विज्ञान कथा शुक्र के परिक्रमण पर आधारित थी। आचार्य जगदीशचंद्र बोस ने सन् 1896 में तूफान पर नियंत्रण के विषय पर बंगला भाषा में एक विज्ञान कथा लिखी। हिंदी और मराठी में भी विज्ञान कथा लेखन की शुरूआत 19वीं शताब्दी के अंत और 20 वीं शताब्दी के आरंभ में हुई। 'आश्चर्य वृत्तांत' (अम्बिका दत्त), 'चंद्रलोक की यात्रा' (केशव प्रसाद सिंह), 'आश्चर्यजनक घंटी' (सत्यदेव परिव्राजक) आदि आरंभिक विज्ञान कथा मानी जाती है। आज सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथाएँ लिखी जा रही हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथाओं के सिद्धहस्त लेखक मौजूद हैं। अंतर्राष्ट्रीय ख़्यातिप्राप्त खगोल-भौतिकीविद् जयंत विष्णु नारळीकर और प्रतिष्ठित फ़िल्म निर्माता मशहूर सत्यजीत रे भारत के विज्ञान कथा लेखकों में से दो अत्याधिक मशहूर हस्तियाँ हैं।"[2] अन्य विज्ञान कथा लेखक हैं-बाळ फोंडके, लक्ष्मण लोंढे, सुबोध जावडेकर, शुभदा गोगटे, निरंजन घाटे आदि।

वरूण ग्रह की धरती पर (वैज्ञानिक एकांकी)

आधुनिक हिंदी एकांकी का स्वरूप पश्चिमी साहित्य की देन हैं। एकांकी वह नाट्य विधा है जो किसी मूल विचार, भावना अथवा घटना से संबंद्ध अभिनेय कथा होती है। एकांकी में संक्षिप्तता तथा संकलन त्रय पर विशेष ध्यान दिया जाता है और लेखक की दृष्टि प्रमुख पात्र अथवा घटना पर ही रहती है। आज हिंदी एकांकी ने ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक आदि सभी प्रकार के विषयों को उभारने का प्रयास किया है।

डॉ. भगवानदास सफड़िया की वैज्ञानिक एकांकी है, 'वरूण ग्रह की धरती पर'। प्रस्तुत एकांकी हिंदी साहित्य की एक नवीन एकांकी विधा की ओर इंगित करते हुये मनोवैज्ञानिक रस से परिपूर्ण है। प्रस्तुत एकांकी रंगमंच की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण एवं छोटी है। जिसमें अभिनेय की गुंजाइश भी हैं। इस एकांकी में तीन दृश्य हैं। प्रमुख पात्र तीन हैं-वरूण ग्रह पर पहुँचने वाले एक भारतीय वैज्ञानिक डॉ. राय, उनकी पुत्री भारती और भूगर्भशास्त्री नवयुवक नवीन। प्रस्तुत एकांकी वैज्ञानिक अनुसंधान और प्रौद्योगिकी संचार का बढ़ता प्रभाव और खत्म होती मानवीय संवेदना को उजागर करती है।

प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु तीन दृश्यों में घटित होती है। प्रथम दृश्य में वरूण ग्रह की धरती पर डॉ. राय, भारती और नवीन ये तीनों क़दम रखते हैं। यहाँ की आबोहवा पृथ्वी जैसी ही है और कृत्रिम ऑक्सीजन की आवश्यकता भी नहीं है। यह देखकर तीनों अचरज में पड़ जाते हैं। डॉ. राय, भारती और नवीन से कुछ नमूने एकत्रित करने का आदेश देकर स्वयं वरूण ग्रहवासी के खोज में निकलना चाहते हैं। उसी समय तीनों लोह मानवों से घिर जाते हैं। डॉ. राय उनसे कहते हैं कि, वे तीनों पृथ्वीवासी हैं और इस वरूण ग्रह मित्रता के संदेश लेकर आये हैं। यह सुनकर उन लोह मानवों को शस्त्र नीचे कर उन तीनों को स्वचालित यान में बिठाकर लाने का आदेश दिया जाता है। ये तीनों पृथ्वी पर बोली जाने वाली भाषा सुनकर अचरज में पड़ने पर आवाज़ सुनायी देती है कि वरूण ग्रह में इस समय मशीनों का युग है और अनुवादक मशीन द्वारा प्रत्येक बात अनुवाद कर एक-दूसरे तक पहुँचा दी जाती है। यान रवाना हो जाता है और यहाँ प्रथम दृश्य समाप्त होता है।

द्वितीय दृश्य में हम देखते हैं कि ये तीनों अतिथिगृह में पहुँचते हैं जहाँ दीवार में बटन लगाये गये हैं जिनके दबाते ही किसी भी प्रकार की समयानुकूल सजावट की जा सकती है। यहाँ की मशीने स्वचालित हैं जिन्हें आदेश देकर सब काम कराया जा सकता है। एक ओर प्रगतिशील वरूण ग्रह और मशीनों को बनाने वाले महान् लोग, लेकिन दूसरी ओर डॉ. राय, को यह बात भी सताती है कि अब तक किसी जीवधारी या सजीव से भेंट क्यों नहीं हो पाई? यहाँ तो चारों ओर लोह मानव ही लोह मानव हैं जो ग्रह की मशीनों की देखभाल तथा मरम्मत करते हैं। डॉ. राय को एक लोह मानव से पता चलता है कि इस ग्रह की प्रत्येक मशीनें रेडियाई तरंगों द्वारा संचालित हैं और उनका संबंध सुपर ब्रेन से है। नवीन सुपर ब्रेन से बात करना चाहता है। भारती को सोच में डूबी देखकर नवीन को ऐसा लगता है कि शायद भारती उन दोनों के विवाह के बारे में सोच रही है। वास्तव में भारती वहाँ की वैज्ञानिक प्रगति को देखकर सोच में डूबी है। भारती विश्व-सेवा करना चाहती है और नवीन से उसके अभियान में साथ देने के लिए कहती है। डॉ. राय अचरज में पड़ जाते हैं कि उनकी आवश्यकतायें एक ही पल में कैसे पूरी की जाती हैं? तभी एक आवाज़ गूँजने लगती है कि वायुभाष (रेडियो) प्रणाली से यहाँ के सेवक उनकी आवश्यकता जान लेते हैं। यह सुनकर तीनों आश्चर्य चकित हो जाते हैं और दूसरा दृश्य समाप्त होता है।

तीसरे दृश्य में एक टेबल पर पूर्ण प्रकाशित सुपर ब्रेन (पारदर्शक ग्लोब) रखा है। उस ग्लोब के अंदर छोटे-बड़े तार नज़र आते हैं। उसी के पास रिसीवर और ट्रांसमीटर संयुक्त अनुवाद मशीन है। तीनों के आते ही सुपर ब्रेन की आवाज़ अनुवादक मशीन से आती है। सुपर ब्रेन उनका स्वागत करता है। डॉ. राय इस बात से नाराज़ हैं कि उन्हें एक भी सजीव प्राणी देखना नसीब नहीं हुआ। तब सुपर ब्रेन बताता है कि वरूणवासी अब केवल कुछ निर्जीव मशीनें ही हैं और आगे कहता है-''जिन सजीव प्राणियों ने हमारा निर्माण किया था उन्होंने महाविनाशक अस्त्र-शस्त्रों का भी निर्माण किया और उसका फल यह हुआ कि वे हमें लड़ाते-लड़ाते स्वयं भी हमारे शिकार हो गये। आज हज़ारों वर्षों से इस ग्रह में जीवित मानव तो क्या पशु-पक्षी और वृक्ष भी नहीं हैं। मेरा निर्माण भी अंत में कुछ बची हुई स्त्रियों में से एक स्त्री वैज्ञानिक ने ही किया था।''[3] इसके साथ ही सुपर ब्रेन स्वयं सभी मशीनों का संचालन करता है लेकिन अब वह पुराना पड़ चुका है। यदि उसका भी पुनर्निर्माण नहीं किया गया तो मशीनों का संचालन कार्य ठप हो जाएगा। इसलिए सुपर ब्रेन डॉ. राय से कहता है कि ''क्या आपका ग्रह हमें ऐसे व्यक्ति नहीं दे सकता जो हमारा स्थान ले सकें? डॉ. राय चूँकि भौतिक शास्त्री है वे अध्यात्मवादी वैज्ञानिकों को लाना चाहते हैं। भारती अपने पिता डॉ. राय के साथ वापस लौटना नहीं चाहती यह देखकर नवीन अचरज में पड़ जाता है तब भारती कहती है-''आश्चर्य क्या है नवीन? मैं स्त्री हूँ। एक माँ भी हूँ। एक माँ ने सुपर ब्रेन का निर्माण किया और दूसरी माँ संकट में उसे सहारा देगी।''[5] भारती वहाँ की समस्याओं का

अध्ययन कर जानना चाहती है कि तुरंत किसी विभाग के बिना काम चलाया जाए जिससे सुपर ब्रेन का कार्यभार हलका हो। यह देखकर डॉ. राय को अपनी बेटी पर नाज़ होता है और वे भारती को वही पर रुकने की सलाह देते हैं। साथ ही वे सुपर ब्रेन को सहारा देने योग्य व्यक्ति लाने के लिए और पृथ्वी ग्रह को बचाने के लिए लौट आना चाहते हैं। अंत में सुपर ब्रेन आशंकित होकर डॉ. राय से कहता है-''किंतु आपको विश्वास है कि आप पृथ्वी ग्रह को इस दशा तक पहुँचने से बचा सकेंगे।''[6]

सुपर ब्रेन का प्रस्तुत कथन इस एकांकी की चरमसीमा है जहाँ पर तीसरे दृश्य की कथा समाप्त होती है। सुपर ब्रेन का उपर्युक्त कथन हम सभी को सोचने के लिए विवश करता है कि आज हम किस दिशा की ओर आगे बढ़ रहे हैं? हम अकेलेपन की कल्पना ही नहीं कर सकते। कहा जाता है न खाली दिमाग शैतान का घर। अकेलापन काटने को दौड़ता है क्योंकि मनुष्य समाज प्रिय होता है। कोई-न-कोई बातचीत करने के लिए चाहिए। ऐसे में पृथ्वी का मानवरहित हो जाने की कल्पना भी हम नहीं कर सकते और न ही सह सकते हैं। दिन-ब-दिन अगर ऐसा ही पृथ्वी का दोहन होता रहा हो वह दिन दूर नहीं जहाँ केवल रोबो ही रोबो, मशीनें होगी। ऐसे ही कई सुपर ब्रेन होंगे और पृथ्वी सही मायने में जनशून्य हो जायेगी। ये मशीनें, ये रोबो आपस में लड़ेगे-कटेंगे, कटकर गिर जायेंगे बिलकुल उस वरूण ग्रह की तरह और फिर से हमें किसी मनुष्य की तलाश करनी पड़ेगी जो मशीनों को फिर से पुनजीर्वित कर सके।

प्रस्तुत एकांकी की कथा अत्यंत सरल है। जिसमें सीमित पात्र हैं। नाटकीय कथोपकथन के कारण प्रस्तुत एकांकी सफ़ल बन पड़ी है।

संदर्भ-

1. ड्रिम 2047 संपादकीय, विज्ञान कथा : विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार का एक प्रभावी माध्यम, पृ. 2
2. वही, पृ. 9
3. वरूण ग्रह की धरती पर (एकांकी-संग्रह)-डॉ. भगवानदास सफड़िया, प्रकाशक नव युग ग्रंथागार, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1975 पृ. 19
4. वही, पृ. 20
5. वही, पृ. 21
6. वही, पृ. 22

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, भोगावती महाविद्यालय, कुरूकली, तह. करवीर, जिला- कोल्हापुर

पृ. 9 का शेष भाग .....

8. रघुवंशमणि, धर्मनिरपेक्षता की परिधि, बहुवचन (पत्रिका), पृ. 19
9. अपवित्र आख्यान, पृ. 135
10. बहुवचन (पत्रिका), पृ. 20
11. अपवित्र आख्यान, पृ. 25
12. मुजफ्फर हुसैन, खतरे अल्पसंख्यकवाद के, पृ. 45
13. अपवित्र आख्यान, पृ. 37
14. वही, पृ. 38
15. वही, पृ. 14
16. वही, पृ. 121
17. वही, पृ. 52
18. वही, पृ. 53
19. वही, पृ. 97
20. वही, पृ. 131-133

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

पृ. 13 का शेष भाग .....

11. वही, पृ. 88-89
12. प्रेमचन्द, मानसरोवर-2, राजकमल प्रकाशक, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998, पृ. 151
13. प्रेमचन्द, मानसरोवर-5, राजकमल प्रकाशक, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ. 106
14. प्रेमचन्द, मानसरोवर-5, पृ. 144
15. प्रेमचन्द, मानसरोवर-1, पृ. 234
16. प्रेमचन्द, मानसरोवर-8, राजकमल प्रकाशक, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ. 16
17. प्रेमचन्द, मानसरोवर-1, पृ. 124
18. वही, पृ.160
19. प्रेमचन्द, मानसरोवर-5, पृ. 130
20. प्रेमचन्द, मानसरोवर-1, पृ. 300
21. वही, पृ. 128
22. प्रेमचन्द, मानसरोवर-5, पृ. 14

म. नं. 1183/1, सैक्टर-40 बी, चण्डीगढ़ 160014

शोध आलेख

समकालीन परिवेश में राजेश जोशी का योगदान

उर्मिला देवी

साहित्य की जीवंतता का मूल कारण होता है साहित्यकार का अपने परिवेश सम्बन्धी प्रतिबद्ध होना और जब साहित्यकार अपने परिवेश के प्रति मुँह फेर लेता है, वो साहित्य उच्च कोटि का साहित्य नहीं कहला सकता। साहित्यकार का अपने समय की तमाम परिवेशगत परिस्थितियों के प्रति जागृत रहना उच्च कोटि के साहित्य को अपेक्षित करता है। कमलेश्वर का बयान आज के साहित्य की सच्ची तस्वीर की कहानी है - ''आज का साहित्य तटस्थता और निरपेक्षता को बहुत पीछे छोड़कर प्रतिबद्धता और उससे भी आगे बढ़कर सम्पूर्ण सम्बन्धता की बात करता है।''[1] इसी कारण आज का साहित्य श्रेष्ठ साहित्य कहा जाता है।

समकालीन साहित्य के सशक्त रचनाकार 'राजेश जोशी' का साहित्य के क्षेत्र में आविर्भाव एक विलक्षण घटना मानी जाती है क्योंकि इनका आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब भारत आज़ादी का सुनहरा सपना देख रहा था। इस समय देश को बहुत बड़े अंतर्बाह्य संकटों का धक्का सहन करना पड़ रहा था। इस बीच बनते-बिगड़ते परिवेश का साक्षी यह साहित्यकार अपनी अंतर्मन की वेदना को अनदेखा कैसे कर सकता था। इसलिए कविता, नाटक, कहानी तथा अन्य विधाओं में वे अपने प्रतिबद्ध होने का सबूत देते हैं। आज़ादी से पहले की राजेश जोशी की मानसिकता धीरे-धीरे युगानुकूल साहित्य में प्रकट होती रही और आठवां दशक तो उनकी उपलब्धियों का विशेष महत्त्व रखता है।

अपने परिवेश के प्रति हमेशा आस्था रखने वाला यह साहित्यकार धीरे-धीरे अपनी परिस्थितियों की माँग को साहित्य में व्यक्त करता रहा। उनका साहित्य अनुभव के लम्बे दौर का साहित्य है। भारतीय गुलामी की यातनाओं से गुज़रते हुए तथा आज़ादी के बाद की मोहभंग, घुटन एवं पीड़ा से भी दर्दनाक अनुभव का भंडार राजेश जोशी ने प्राप्त किया है। एक भावुक संवेदनशील सृजनात्मक व्यक्ति को जिस अनुभूति की आवश्यकता होती है उन सम्पूर्ण अनुभूतियों से राजेश जोशी को गुज़रना पड़ा।

कर्मक्षेत्र और साहित्यिक क्षेत्र के अंतर को मिटाते हुए अपनी अलग प्रतिबद्धता की छाप उन्होंने निर्मित की, यही उनकी साहित्यिक उपलब्धियों की सबसे बड़ी महानता है। समय की कमी से वे हमेशा टकराते रहे, परन्तु समय की कमी का परिणाम उनकी प्रतिबद्धता के आड़ में कभी नहीं आया। इसी कारण चाहे कविता हो या कहानी हो परिवेश की इमानदारी उसमें सहज ही उभरकर आई है।

उनकी कहानियाँ समकालीन परिवेश का जीवंत दस्तावेज है, यह कहा जाए तो गलत नहीं होगा। इन कहानियों में जिस आत्मीयता से प्रतीकात्मक पात्रों की सर्जना की है वह गौरव के काबिल है। 'कपिल का पेड़' कहानी-संग्रह की भूमिका में वे लिखते हैं - ''बस एक ऐसी कहानी पाने की इच्छा मन में है जिसमें मैं मीर की तरह अपनी नींद खो दूँ और दूसरे दिन सुबह फिर उसी कहानी को कहने का मन करें।''[2]

इस प्रकार कहानी को वे काल्पनिक, अवास्तविक जगत से बाहर निकालकर यथार्थ पृष्ठभूमि से जोड़ने की जी तोड़ मेहनत करते हैं। इनकी कहानियाँ परिवेशगत सच्चाइयों का चित्रण तो करती हैं, परन्तु साथ में भ्रष्ट व्यवस्था के परिवर्तन की माँग भी करती हैं। परिवेश की खोखली व्यवस्था का प्रभाव व्यक्ति के चरित्र पर पड़ने से, उस चरित्र में दूषित प्रवृत्तियाँ पनपने लगती हैं और घर का सारा सुख चैन नष्ट हो जाता है, 'सांप' कहानी इसी घिनौनी प्रवृत्ति को समाज के सम्मुख उपस्थित करती है। अंधश्रद्धा, शिक्षा व्यवस्था का भ्रष्टाचार, शासकीय नेताओं की दोगली नीति आदि समकालीन परिवेश की पहचान है। 'आलू की आँख' कहानी में इन्हीं स्थितियों के विरूद्ध राजेश जोशी की आवाज़ बुलंद हो उठी है। एक ही जगह रुकी शिक्षा प्रणाली का आक्रोश क्या परिवेश की कहानी का बयान नहीं है?

''शिक्षा हिलती-डुलती नहीं थी, वह बरसों से एक ही जगह जमी हुई थी और मजे से बबुए जन रही थी।''[3]

महानगरीय सभ्यता की पहचान यांत्रिक सभ्यता के रूप में हुई है और इस यांत्रिक सभ्यता ने आदमी को बिल्कुल अकेला कर दिया। वह घुटन और संत्रास का जीवन भुगत रहा है। ऐसे माहौल में उसे प्यार तथा अपनत्व की तलाश है जिसे

वह प्राप्त नहीं कर पाता। समकालीन जीवन की इसी पीड़ा को 'कपिल का पेड़' कहानी में व्यक्त किया है-''धीरे-धीरे लोग बेहद अकेले होते जा रहे हैं। न कोई दीवार है न पिंजरा, लेकिन कहीं बहुत अंदर गड़बड़ ज़रूर है, सारी दूर फैली हुई कोई चीज़ है, जो दिनोंदिन हमें अकेला कर रही है।''[4]

प्रो. जोगेश कौर 'कपिल का पेड़' कहानी-संग्रह का समीक्षात्मक परिप्रेक्ष्य' शीर्षक में लिखती है- ''इन कहानियों के माध्यम से इस कहानी-संग्रह और लेखक को जानने का अवसर मिला और लगा कि संग्रह में आत्मीयता, संरक्षण और युवक की सफलता और भटकाव को सामने लाने वाली कहानियाँ हैं।''[5]

समकालीन जीवन की घुटन, संत्रास की स्थितियों को राजेश ने कहानी की तरह कविता में भी व्यक्त किया है। सामाजिक परिस्थितियों की सच्ची जीवंत कहानी कविता में उभरकर आयी है।

महानगरीय सभ्यता के अपने जीवन घुटन को सहज करने वाले मजदूर की समस्या समकालीन परिवेश की ज्वलंत समस्या का प्रमाण है। महानगरीय सभ्यता में सिर्फ 'लेबर' को ही संकटों का सामना नहीं करना पड़ता अपितु उनके बच्चों को भी संकटों से टकराना पड़ता है। इसी परिवेश की सजीव समस्या की अभिव्यक्ति 'लेबर कॉलोनी के बच्चे' नामक कविता में हुई है -''ठंड की इस सुबह की तरह/साँवले और धुंधले हैं/उनके चेहरे/चेहरों के पीछे/उगता हुआ सूरज है/जिस्मों से फूटती/एक धूप है।''[6]

एक तरफ महानगरों की बढ़ती हुई आबादी है तो दूसरी तरफ पिछड़ा हुआ आदिवासी वर्ग, जिसको जीवन का सुदंर सपना देखने का भी अधिकार नहीं। ऐसे लोगों की आत्मीय भावनाओं की अभिव्यक्ति करके रचनाकार ने अपने युगीन होने का प्रमाण पेश किया है। 'एक आदिवासी लड़की की इच्छा' कविता की निम्न पंक्तियों में कवि की युगीन वैचारिकता उभरकर आई है -''सौता सूत कुछ नहीं लेना/तनिक सी इच्छा है - काजर की बिंदिया की।''[7]

बेकारी और भूखमरी की कहानी भारत के लिए नई नहीं है। बेकारी का शिकार आदमी अपना नसीब आज़माने के लिए 'पत्थर की अगूंठियाँ' पहनता है। परन्तु अपनी दयनीय अवस्था को दूर करने के लिए उसे काम धंधे की आवश्यकता है न कि पत्थर की अगूंठियों की। 'पत्थर की अगूंठियाँ' कविता इसी समकालीन परिवेश की सशक्त प्रस्तुति है -''न धंधा न पानी/न ज़मीन न जायदाद/उसे क्या देंगी/ये पत्थर की अगूंठियाँ।''[8]

समकालीन परिवेश में बेकारी, भूखमरी से तंग आ चुका आम वर्ग तो है ही परन्तु इससे टकराता हुआ और अपने सुंदर जीवन का सपना लेकर दौड़ने वाला बंजारा वर्ग क्या कोई महत्त्व नहीं रखता। बंजारों के संकट को देखकर कवि की अंतर्आत्मा की आवाज़ उन्हें बेचैने कर देती है -''ऊँट की पीठ पर अपनी खटिया बाँध कर/चल देंगे अभी बंजारे/दूर तक उनके साथ-साथ जाएगी मेरी बेचैन आत्मा।''[9]

अस्तित्व संकट का भय समकालीन परिवेश की ज्वलंत समस्या है। दो महायुद्धों और फिर देश की आंतरिक कलहों की चक्की में पिसता हुआ देश अपने भविष्य की चिंता के साथ-साथ अस्तित्व संकट की स्थिति से भी ग्रस्त है। इन्हीं युद्धों का भयावह संकट का बोध 'एक बार फिर' कविता में व्यक्त किया है -''पत्नी बैठी होगी थाली परोसकर/और कौर तोड़ने से पहले/गिर पड़ेगा न्यूट्रान बम।''[10]

आज के परिवेश की दुःखद घटना है कि आज लोगों की परिवार में आस्था नहीं रही। इसी कारण संयुक्त परिवार खत्म होते जा रहे हैं। बच्चे अपने माँ-बाप को भी नहीं रखना चाहते। इसी की अभिव्यक्ति 'रात किसी का घर नहीं' कविता में की है -''एक बूढ़ा मुझे अक्सर रास्ते में मिल जाता है/कहता है कि उसके लड़कों ने उसे घर से निकाल दिया है .../... कहता है उसने बचपन में भी अपने बच्चों पर/कभी हाथ नहीं उठाया/लेकिन उसके बच्चे उसे हर दिन पीटते हैं।''[11]

समकालीन परिवेश को जिस साम्प्रदायिक ताकतों ने नेस्तनाबूद किया, वह साम्प्रदायिकता का दौर आज देश के सामने सबसे बड़ी मुख्य समस्या बन गई है। मेरठ 87, रफ़ीक मा. साहब और काग़ज़ के फूल, पागल आदि कविताओं में साम्प्रदायिकता सम्बन्धी कवि का कड़वा रुख दिखाई देता है। प्रस्तुत है 'मेरठ 87' कविता की कुछ पंक्तियां -''पीली बत्तियों वाली बोगी में/ठसा-ठस भरे लोग बुदबुदाते हैं/मेरठ से कब बाहर निकलेगी/यह रेलगाड़ी।''[12]

कहानियों और कविताओं के साथ-साथ नाटकों में भी राजेश जोशी ने समकालीन परिस्थितियों को अभिव्यक्त किया है। 'टंकारा का गाना' नाटक समकालीन जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, चापलूसी, मोहभंग, मानसिक तनाव, तानाशाही, आम आदमी के जीवन की त्रासद विडम्बना तथा बौद्धिक वर्ग की उपेक्षा आदि की सशक्त प्रस्तुति है। समकालीन परिवेश इन्हीं विसंगतियों की उपज है।

मँहगाई से टकराता हुआ आम आदमी इसमें प्रस्तुत है, जो समकालीन जीवन की विडम्बना को जीवंत रूप में अंकित करता है। शासन व्यवस्था मनचाही मँहगाई बढ़ा देती है तो आम आदमी के सामने संकटों का ढेर-सा लग जाता है। इसको नाटककार नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता। मँहगाई के उग्र रूप का चित्रण देखिए जो व्यवस्था की पोल खोल देता है। राजा के

दूत का कथन देखिए - ''टंकारा के हर खास और आम को इत्तला दी जाती है कि टंकारा के महाराजाधिराज ने यह हुक्म जारी किया है कि आज और इसी वक्त से हर चीज़ की कीमत में दो कोड़े प्रति दर्जन की वृद्धि की गई है। यह आदेश आज और इसी वक्त से लागू माना जाएगा।''[13]

भ्रष्टाचार और अनाचार की यह कहानी सन् 60 के बाद अधिक तीव्र गति से बढ़ रही है। इसी को राजेश जोशी ने अपने साहित्य की पृष्ठभूमि के लिए चुना है। व्यवस्था की पोल खोलने वाला उनका नाटक 'जादू जंगल' सत्ता और व्यवस्था के नंगे और जंगली चरित्र को उजागर करता है तथा उसकी जादुई माया को उद्घाटित करता है।

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी पर आधारित 'अच्छे आदमी' नाट्यकृति समकालीन परिवेश की सशक्त रचना है। अच्छे आदमी की आड़ में छिपा हुआ क्रूर, भयानक व स्वार्थी आदमी आज के समय की सच्ची और भयानक समस्या है। इन्हीं प्रवृत्तियों को समाज के सामने नंगा करना नाटककार का उद्देश्य है। गरीबी और दयनीयता का शिकार 'उजागिर' इस नाटक का व समकालीन जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। सीता और उजागिर के रूप में जीवन का सुंदर सपना देखने वाले और उसको पूर्ण करने के लिए तड़पते हुए आदमी को अच्छे आदमी द्वारा अपने जीवन को बर्बाद होते देखकर नाटककार की करूणा जागृत होती है-''उजागिर का छोटा-सा गाँव रहिकपुर हिन्दुस्तानी देहात का चरित्र, उनकी मानसिकता को पूरी तीव्रता से स्थापित करता है।''[14]

समकालीन जीवन की मानसिक विकृतियों को, विद्रूपताओं को समाज सापेक्ष बनाने की पूरी इमानदारी के साथ कोशिश की है। यह राजेश जोशी का अपने परिवेश के साथ जुड़े रहने का ही प्रमाण है। समकालीन परिवेश की यह प्रवृत्ति साहित्य के लिए अनिवार्य अवश्य होती है। इसलिए समकालीन साहित्य में समय की झाँकी प्रस्तुत हुई है। नगेन्द्र के शब्दों में कहा जाए तो - ''समसामयिक नाटककारों में एक प्रवृत्ति इस रूप में भी विकसित हुई है कि वे समकालीन विकृतियों, विद्रूपताओं का अंकन करते हुए जीवन के नए मानवीय मूल्यों की महत्त्व-प्रतिष्ठा करते हैं।''[15]

इसी उपलक्ष्य में राजेश जोशी का साहित्यिक योगदान महत्त्व का रहा है। उन्होंने समकालीन तमाम स्थितियों को अपने साहित्य में उद्घाटित करके परिवेश के साथ जुड़े रहने का प्रमाण दिया है। अतः हिन्दी साहित्य उनके साहित्यिक योगदान के लिए हमेशा याद करेगा।

संदर्भ-

1. के. एम. मालती, साठोत्तरी हिन्दी कहानी, पृ. 56
2. राजेश जोशी, कपिल का पेड़, भूमिका से
3. वही, आलू की आँख, पृ. 74
4. वही, कपिल का पेड़, पृ. 144
5. (सं.) विजय कुमार मिश्र, सामयिक मीमांसा, जुलाई-सितम्बर 2008, पृ. 115
6. राजेश जोशी, धूपघड़ी (एक दिन बोलेंगे पेड़), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2002, पृ. 17
7. वही, पृ. 38
8. वही, पृ. 71
9. वही, नपेथ्य में हँसी, पृ. 9
10. वही, धूपघड़ी (मिट्टी का चेहरा), पृ. 123
11. वही, चाँद की वर्तनी, पृ. 13
12. राजेश जोशी, नेपथ्य में हँसी, रामकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1994, पृ. 42
13. वही, टंकारा का गाना, पृ. 39
14. राजेश जोशी, अच्छे आदमी की भूमिका से
15. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 750

वाड्मय बुक्स का प्रचारित साहित्य

1-	Mk- lthr flg ifjgkj	fxfjjkt fd'kkj d dFkk&lkfgR; e ukjh	450
2-	Mk- i"ik xk;dokM]	lkBkUkjh fgnh dgkfu;k e ukjh	395
3-	Mk- jke foykl dkcy	jkgh ekle jtk d miU;kl lkekftd nf"V	550
4-	Mk- n;k nhf{kr	e=k;h i"ik d dFkkRed vk;ke	300
5-	Mk- ltkrk oek	ub lnh vkj nfyr	400
6-	Mk- y[kkj dkj oek	n'k foHkktu vkj ukjh dh =kklnh I	550
7-	Mk- y[kkj dkj oek	n'k foHkktu vkj ukjh dh =kklnh II	650
8-	Mk- ;'kordj@Mk- e[kR;kj	L=kh foe'k d fofo/k vk;ke	695
9-	Mk-nhik dpdj	fgnh ukV; lkfgR; e efgyk jpukdkjk ---	800
10-	ju JhokLro	gfjvk/k d egkdk0;k e ukjh ik=k	200

वाड्मय बुक्स, अलीगढ़

शेष पृ. 50 पर.....

शोध आलेख

अज्ञेय, मुक्तिबोध और सर्वेश्वर : कितने दूर, कितने पास

अरुण प्रसाद रजक

अज्ञेय, धर्मवीर भारती, जगदीश चतुर्वेदी की तरह सर्वेश्वर अस्तित्ववाद एवं फ्रायडीयन बोध के लेखक नहीं है। मुक्तिबोध की तरह जीवन की सच्ची अनुभूति कमाने वाले लेखक हैं। उनका उद्घोष हैं-''मैं नया कवि हूँ-/इसी से जानता हूँ।''सत्य की चोट बहुत गहरी होती है। मैं नया कवि हूँ।''[1] मुक्तिबोध भी नये कवि के नाते सत्य से चोटिल थे। जीवन की सच्ची अनुभूति में कितनी पीड़ा है। मुक्तिबोध कहते हैं-''अगर तुम्हें सच्चाई का शौक है/तो बीवी को दुनिया के जंगल में छोड़ दो/मृत्यु के घनघोर अंधेरे को ओढ़ लो/अगर तुम्हें सच्चाई का शौक है...हमारी आत्मा के सांचे में ढल जाओ/यदि तुम्हें जीने की गरज है!!''[2] अंधकार से पंजा लगाने का हौसला सभी कवियों के बूते की बात नहीं। जीवन से मुठभेड़ वही कर सकता है जिसे मानव के दुःख-दर्द और अमानवीय स्थिति का अहसास हो। सर्वेश्वर कहते हैं-''कड़कती बिजली है/दिलों में बस/हर अंधेरा खुद/रोशनी को जन्म देता है/अंधेरे में निकल पड़ों/तो अंधेरा अंधेरा नहीं रह जाता।''[3] नये कवि का यह संकल्प है। लेकिन नये कवि अज्ञेय का आधुनिकताबोध इससे एकदम अलग है वे 'तार सप्तक' के वक्तव्य में कहते हैं-''आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन-वर्जनाओं का पुंज है।''[4] अतः अज्ञेय ने यौन प्रतीकों द्वारा सामाजिक वर्ग-चेतना पर व्यंग्य किया है-''घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले/भूमि के कंपित उरोजों पर झुका-सा/विशद, श्वासाहत, चिरातुर/छा गया इंद्र का नील वक्ष/व्रज सा, यदि तड़ित से झुलसा हुआ सा/आह मेरा श्वास है उत्तप्त/धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार/प्यार है अभिशप्त-/तुम कहां हो, नारी!''[5] अज्ञेय ने सौंदर्य सृजन का मूल कुंठा को ही माना है। नये कवियों के अग्रगण्य अज्ञेय कहते हैं-''आज के मानव का मन यौन-परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएं सब दमित और कुंठित है। उनकी सौंदर्य-चेतना भी इससे आक्रांत है, उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं।''[6] आज का मानव दमित है, कुंठित है-यह पूंजीवादी दुनिया का प्रचार है। मुक्तिबोध मानते हैं यह प्रचार करने वाला कवि जीवन की सच्ची अनुभूति के साथ 'फ्रॉड' करता है। 'जनता स्वयं ऐस्थेटिक इमोशन का भण्डार है।''[7] वह अपने ही दुःखों में कुंठित, विगलित आक्रांत नहीं रहता, उसमें दुनिया बदलने की ताकत है। कवि को चाहिए कि वो जनता के दुःखों को तोड़ने के लिए प्रतिबद्ध रहे। सर्वेश्वर कहते हैं-''दुःख तुम्हें क्या तोड़ेगा/तुम दुख को तोड़ दो/केवल अपनी आँधों/औरों के सपनों से जोड़ दो।''[8] सौंदर्य को समाज में हस्तक्षेप करना चाहिए। सौंदर्य को आत्म प्रतीति अथवा आत्मसाक्षात्कार का साधन मानने वाले लेखक सामाजिक जंजालों से दूर भागना चाहते हैं। अज्ञेय को सौंदर्य कभी-कभी इतना उन्मत बना देता है कि वह सारा सांसारिक जंजाल कुछ समय के लिए भूल जाते हैं-''सूंघ ली है सांस भर-भर/गंध मैंने इस निरंतर/खुले जाते क्षितिज के उल्लास की/खा गया हूँ नदी तट की/लहराती विछलत जिसे सौ बार/धो-धो कर गयी है अंजली वातास की/पी गया हूँ अधिक कुछ मैं/स्निग्ध सहलाती हुई-सी/धूप यह हेमंत की/आज मुझ को चढ़ गयी है/यह अथाह अकूल अपलक/नीलिमा आकाश की/मत छुओ, रोको, पुकारो मत मुझे/जहाँ मैं हूँ वहां से मत उतारो। मुझे कुछ मत कहो/''[9] अज्ञेय के लिए सौंदर्य एक प्रकार लीन कर देने वाला नशा है, जहाँ व्यक्ति पूरी तरह पर उन्मत हो जाता है। सारी मनोदशाएं एक नशे में डूबे हुए व्यक्ति की हैं। आधुनिकतावादियों का आत्मीय या अभिजात्य सौंदर्यबोध यथास्थितिवाद का समर्थक एवं सामाजिक परिवर्तन का विरोधी मूल्य है। विचारधारा शून्य एवं इतिहास-दृष्टि रहित यह सौंदर्य अगर मानवीय धरातल की पक्षधरता भी घोषित करता है तो इसमें केवल फतवेबाजी, नक्काशी व भावाद्रेक का पर्याय भर ही होगा। व्यष्टि प्रेमी सौंदर्य के चितेरे शोषित एवं पददलितों के पक्ष से अपने को मुक्त रखने के लिए मानव मात्र या सृष्टि मात्र के प्रति प्रेम का नारा देते हैं। अज्ञेय जैसे अभिजात कवि की रचनाओं में शोषण और गरीबी के चित्रण फैशन के रूप में ज्यादा आये हैं, आंतरिक दबाव के कारण कम। उदाहरण के लिए अज्ञेय की 'हवासं चैत्र' की तरह प्रसिद्ध कविता ली जा सकती है ''बह चुकी हवाएं चैत की/कट गयी गुलें हमारे खेत की/कोठरी में लौ बढ़ाकर दीप/गिन रहा होगा महाजन सेंत की।''[10] यहाँ शोषित के प्रति सहानुभूति कम है, महाजन के प्रति 'ईर्ष्या' अधिक है।

ऐसे सौंदर्यवादी अगर मजदूर पर भी लिखेंगे तो उनकी अंतर्वस्तु अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के बावजूद पक्षधरता व सहयोगिता के अभाव के कारण प्रभावशाली नहीं होगी। शोषितों के प्रति अज्ञेय की बौद्धिक सहानुभूति 'अंधकार में जागने वाले' शीर्षक कविता में चित्रित हुई है-''एक के कुरते की, कुहनियां छिदी होंगी/एक के निकर में बटनों का स्थान/आलपिन ने लिया होगा/एक की हाथ की पोटली में गये दिन के/सबेरे की रोटी का टुकड़ा होगा।''[11] सौंदर्य की इस अंतर्वस्तु में छीजन है। यह केवल 'Poem on the Page' की बात करती है। ग़रीबी के इस चित्रण में वह ऐन्द्रिय संवेदना नहीं है, जो मुक्तिबोध और सर्वेश्वर के चित्रण में होती है। कवि मुक्तिबोध सौंदर्य के क्लासिकी परंपरा से हटकर कविता 'मुझे याद आते हैं' में कहते हैं-''मुझे याद आती है/आँखों में तैरता है चित्र एक/उर में संभाले दर्द/गर्भवती नारी का/कि जो पानी भरती/है वजनदार घड़ों में/कपड़ों को धोती है झाड़-झाड़/घर के काम बाहर के काम सब करती है/अपनी सारी थकान के बावजूद/मजदूरी करती है/घर की गिरस्ती के लिए ही...पुत्रों के भविष्य के लिए सब/उसके पीले अवसाद भरे कृशमुख पर।''[12]

इसी तरह सर्वेश्वर के निम्न चित्रण का ऐंद्रियबोध मार्मिक है-''जैसे उनसे ही नयी फसल उगा लूंगा,/जैसे उन्हीं के सहारे/नहरे खींचता/मैं उन खेतों में ले जाऊंगा,/जहाँ कांसे की चूड़ियां खनकती/मुँह अंधेरे दौरियां चलाती हैं।/निराई और बोआई के गीत गाती हैं।/और कटी हुई फसलों के बीच /पीली धोती अनवासे/एक सांवली लड़की दौड़ती हुई दिखायी देती है।''[13]

जीवन संघर्ष की सौंदर्यबोधी संशलिष्टता जैसा मुक्तिबोध और सर्वेश्वर के पास है, वह अज्ञेय के पास दुर्लभ है। अज्ञेय का सौंदर्यबोधी संसार मूलतः गढ़ा गया और सतही संसार है। बहुसंख्यक जन-वर्ग की पक्षधरता से हटकर कोई भी कलात्मक कृति वैयक्तिक सौंदर्यवाद का नमूना हो सकती है, संघर्षशील सामाजिक चेतना का नहीं। विष्णु खरे ने अज्ञेय जैसे समर्थ शैल्पिक दक्षता वाले व कलात्मक सौंदर्यवादी कवि के कवि कर्म को 'उत्तर-छायावादी तलछट के अंत' की संज्ञा दी है और अभिमत रखा है कि सामान्य मनुष्य कभी भी उनकी कविता का विषय नहीं रहा। ''सामाजिक कविताएं लिखने की कोशिश भी व्यर्थ हुई। उनके इन प्रयत्नों को आज की युवा कविता के दबाव के कारण ओढ़े गये फैशन के रूप में ही देखा जायेगा। उनके पास वह भाषा ही नहीं है जो आज के जमाने के सत्य को जबान दे सके।''[14] यह भी कहते हैं ''उनके पास न तो वह अनुभूति है, न वह मुहावरा और न वह इरादे जो उन्हें एक सही सामाजिक कवि बना सके।''[15] विष्णु खरे अपनी बात स्पष्ट करने के लिए अज्ञेय की 'लौटते हैं जो वे प्रजापति हैं' कविता का उदाहरण देते हैं। क्या कोई विश्वास कर सकता है कि उनकी ये पंक्तियां 'दीन' और 'नंगों' के लिए लिखी गयी होगी-''अगाध असीम महासागर में/झुके हुए तालों की ओट में/प्रवाल कीटों का गढ़ा हुआ/एक छेदों भरा छल्ला/वसुंधरा की नाभि/आघ मातृका की योनी। ऐसा ही उपेक्षा में तो/बार-बार, बार-बार, बार-बार/अजर अजस्त्र शृंखला में/जनमेगा पनपेगा/ऐल मनु अजित, अघर्ष/अविधित, आत्ममंत्र।''[16] अज्ञेय की उत्कृष्ट काव्यभाषा का परिष्कृत काव्य-संसार धीरे-धीरे आम आदमी से दूर पड़ता गया। उनके शब्द चमत्कृत होते गये किंतु जनता के साथ आत्मीयता स्थापित नहीं कर पाये। यही कारण है कि अज्ञेय की अपेक्षा मुक्तिबोध, सर्वेश्वर को नयी पीढ़ी ने पसंद किया। सर्वेश्वर का सरोकार जन से था। उन्होंने किशोर कल्पना को उत्तेजित किया तथा संवेदना शक्ति को ही स्फूर्ति भी दी। कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं-''निराला और मुक्तिबोध के बाद सर्वेश्वर तथा रघुवीर सहाय ही ऐसे दो कवि हैं जो अकाल पक्वता से बचते हुए जल्दी ही जिज्ञासाओं से मथित वयस्क कवि बनते जाते रह हैं।''[17] सर्वेश्वर और रधुवीर सहाय की कविता युवा मानस को आंदोलित करती है, क्योंकि ''जिन जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचियों पर मुक्तिबोध ने जमकर प्रहार किये थे, उन्हीं के अवशेषों को गिरने ढहाने में इन दो कवियों का भी सक्रिय योग रहा है।''[18] सर्वेश्वर ने मुक्तिबोध सौंदर्य को ही विकसित किया है। मुक्तिबोध ने अभिजात्यवादी सौंदर्य के निष्कर्ष को बदला, सर्वेश्वर ने नये सौंदर्य की पटभूमि पर कविता तैयार की, जिसे समकालीन कविता ने विरासत के रूप में अपनाया है।

संदर्भ-

1. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, मैंने कब कहा, वीरेंद्र जैन (सं.) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड : एक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 151
2. मुक्तिबोध, गजानन माधव, अगर तुम्हें सच्चाई का शौक है, नेमीचंद जैन (सं.) मुक्तिबोध रचनावली-1, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985, पृ. 369
3. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, कुआनो नदी-खतरे का निशान, वीरेंद्र जैन (सं. 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड : दो', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं., 2004, पृ. 31
4. अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली,

प्रथम संस्करण, 1943, पृ. 78
5. अज्ञेय, इत्यलम, प्रतीक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1946, पृ. 154
6. तार सप्तक, पृ. 78
7. मुक्तिबोध, गजानन माधव, काव्य : एक सांस्कृतिक प्रक्रिया, नेमीचंद जैन (सं.) मुक्तिबोध रचनावली-5, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985, पृ. 198
8. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, कुआनो नदी, वीरेंद्र जैन (सं) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड : दो, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 36
9. अज्ञेय, उन्तम, सदानीरा, भाग-2, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986, पृ. 69
10. अज्ञेय, हवाएं चैत्र, बावरा अहेरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय सं. 1972, पृ. 13
11. अज्ञेय, अंधकार में जागने वाले, कितनी नाव में कितनी बार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1979, पृ. 43
12. मुक्तिबोध, गजानन माधव, मुझे याद आते हैं, नेमीचंद जैन (सं. मुक्तिबोध रचनावली-1, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985, पृ. 239
13. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल, कुआनो नदी, वीरेंद्र जैन (सं.) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली खण्ड : दो, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2004, पृ. 20
14. खरे, विष्णु, आलोचना की पहली किताब, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय सं. 2004, पृ. 55
15. वही, पृ. 55
16. अज्ञेय, लौटते हैं जो वे प्रजापति हैं, सदानीरा, भाग-2, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986, पृ. 214
17. पालीवाल, कृष्णदत्त, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना-कर्म, वाणी प्रकाशन प्र. सं. 2006, पृ. 54
18. वही, पृ. 54

20 पी. बी. एम. रोड, चाँपदानी, जिला : हुगली (प. बं.)

पृ. 24 का शेष भाग...

हो गया है। तो दूसरी तरफ निम्न एवं मध्यम वर्ग है जिसके पास न तो पहले कुछ था और न ही वर्तमान में कुछ है। उसके सभी स्वप्न आज भी स्वप्न हैं।

संदर्भ-

1. Weight, Elements of Sociology, p. 5
2. डॉ. रामसजन पांडेय, कविवर डॉ. हरमेन्द्र सिंह बेदी, पृ. 35
3. चंद्रकान्त देवताले, पत्थर फेंक रहा हूँ, पृ. 28
4. वही, पृ. 166
5. वही, पृ. 24
6. वही, पृ. 154
7. वही, पृ. 22
8. वही, पृ. 41
9. वही, पृ. 23
10. वही, पृ. 164
11. वही, पृ. 79
12. वही, पृ. 86
13. वही, पृ. 68
14. वही, पृ. 78
15. वही, पृ. 38

शोध आलेख

स्त्री–विमर्श और हिन्दी साहित्य

दिनेश कुमार

प्राचीन काल में इस देश में शिक्षा का खूब प्रचार था। गार्गी, मैत्रेयी और सुलभा आदि अनेक ब्रह्मवादिनी और मंत्र-दर्शिनी नारियाँ थीं। वैदिक काल में स्त्रियों की दशा अति उन्नत थी। अनेक स्त्रियाँ ऋषिका हुई। वैदिक काल में काक्षीवान की पत्नी घोषा काक्षीवती ऋग्वेद के दो सूक्तों की ऋषिका हैं ''काव्य-सृजन या साहित्य-सृजन के क्षेत्र में स्त्रियों की भारत में लम्बी परम्परा रही है। वैदिक ऋचाओं की लेखिका होने से लेकर उपनिषदों, भाष्यों, तर्कशास्त्र, काव्य आदि में स्त्रियों का लेखन निरन्तर मिलता है।''[1]

वैदिक युग में नारी की स्थिति उतनी ही सहज थी जितनी कि पुरुष की। शिक्षा के द्वार उसके लिए खुले हुए थे। वह ऋषिपद प्राप्त कर सकती थी। अपने जीवन साथी को चुनते का अधिकार उसे प्राप्त था। पुनर्विवाह स्त्री-पुरुष दोनों के लिए मान्य था। स्त्री के विकास को अवरुद्ध करने वाली अमानवीय प्रथाओं का सूत्रपात नहीं हुआ था।

संसार भर में नारी जाति सदा से पददलित रही है और यद्यपि साहित्य में नारी की बड़ी महिमा है, पर व्यवहार में नारी को कभी भी उच्चासन नहीं दिया गया। नारी जाति की विवशताएं सदा से बनी रही हैं और कभी भी उसे सुख-सुविधाएं प्राप्त नहीं हुई।

मनु ने कहा है-यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।/यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।

जिस घर में नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं। जहाँ उनकी अवहेलना होती है वहाँ के सभी कार्य निष्प्रयोजन हो जाते हैं।

मनुस्मृति में जहाँ एक ओर यह कहा गया है कि जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता वास करते हैं वहीं दूसरी ओर नारी की स्वतंत्र अस्मिता को खत्म करते हुए मनु ने नारियों के लिए यह आदेश भी जारी किया कि स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं रह सकती बचपन में उसे पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्रों के अधीन रहना चाहिए। यह एक ऐसी द्वैत स्थिति है जब वास्तविकता में तो नारी की स्वतंत्रता का हनन करके उसे दास बना लिया गया है, लेकिन चेतना के स्तर पर पूजा के लिए आज भी देवियों का अस्तित्व बना हुआ है- ''भारतीय स्त्री के सम्बन्ध में भी यही सत्य हो रहा है। उसको बहुत आदर-मान मिला उसके बहुत गुणानुवाद गाए गए, उसकी ख़्याति दूर-दूर देशों तक पहुँचाई गई, यह ठीक है, परन्तु मन्दिर के देवता के समान ही सब उसकी मौन जड़ता में ही अपना कल्याण समझते रहे। उसके अत्यधिक श्रद्धालु पुजारी भी उसकी निर्जीवता को ही देवत्व का प्रधान अंश मानते रहे और आज भी मान रहे हैं।''[2]

स्त्री-विमर्श के सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य को विभिन्न कालों में सुविधा की दृष्टि से बाँटा जा सकता है। आदिकाल के हिन्दी साहित्य में अनेक प्रकार के साहित्य की रचना हुई जैसे सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, रासो साहित्य और लौकिक साहित्य आदि। इस साहित्य में स्त्री का स्वरूप निम्न कोटि का रहा है। सिद्ध, जैन और नाथ साहित्य में स्त्री को पुरुष की उन्नति का सबसे बड़ा रोधक माना गया है। ये साहित्य आत्मसंयम, हठयोग और मन को साधने की बात करते हैं। वहीं स्त्री को पाप का रास्ता बताते हैं तथा उसके साहचर्य से दूर रहने की बात करते है। इसका उदाहरण गोरखनाथ जी हैं जिन्होंने नाथ साहित्य की स्थापना की तथा अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया जो एक स्त्री के साहचर्य में फँसकर लोकहित को भूल गए थे।

वहीं आदिकाल के रासो साहित्य में स्त्री का दूसरा रूप ही उभरकर सामने आता है। चाहे फिर वह आध्यात्मिक ही क्यों न हो। हिन्दी के प्रथम महाकवि चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज रासो की रचना की जिसमें उन्होंने नायक को नायिका को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता दिखाया है। क्योंकि वह नायिका रूप सौंदर्य एवं प्रेम की साक्षात् देवी है। यहाँ नारी दोनों रसों के केन्द्र में है।

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल में पुरुषों द्वारा रचित सहित्य में स्त्री के विभिन्न रूप हमें दिखाई देते हैं जैसे कोई उसे पाप की गठरी मानता है तो कोई उसे ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता। वहीं लौकिक साहित्य में आम स्त्री के जीवन चरित को दर्शाया गया है। अब्दुर्रहमान का संदेश रासक ऐसा काव्य है जो

एक स्त्री की व्यथा उसकी संवेदना, मार्मिकता, उसके धैर्य, प्रेम के अथाह सागर रूपी व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य का आदिकाल अपने पूर्वानुभवों से कहीं न कहीं प्रभावित है। जिसमें कहीं मनु के विचार परिलक्षित होने लगते हैं तो कहीं साधारण आम व्यक्ति के विचार। लेकिन स्त्री के बारे में ये सब विचार सिर्फ पुरुषों द्वारा ही दिए गए हैं।

पूर्वमध्य काल यानि भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य में स्वर्णकाल के रूप में जाना जाता है। इस काल के चार महास्तम्भ कबीर, जायसी, तुलसी और सूर नारी के सन्दर्भ में अपने-अपने विचार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्तुत करते हैं। मध्यकाल तक आते-आते नारी जीवन अनेक विसंगतियों से भर गया यही कारण है कि हिन्दी भक्ति काव्य में स्त्री-विमर्श सशक्त होकर रचनाओं के रचनातंत्र और रचना रहस्य के रूप में आया।

सन्त काव्य के प्रमुख कवि कबीर कहीं न कहीं नाथ सम्प्रदाय से प्रभावित थे। इसलिए वे हमेशा स्त्रियों से दूर रहने की बात करते थे। वे स्त्री को महाठगिनी पाप का द्वारा आदि मानते थे। सन्तकाव्य को छोड़कर हिन्दी भक्ति काव्य की सम्पूर्ण काव्य चेतना सामाजिक सन्दर्भ में स्त्री-विमर्श को ही केन्द्र में रखकर अपने रचना तंत्र का निर्माण करती है। स्त्री-जीवन की अस्मिता इस काव्यधारा के रचना रहस्य के रूप में अनुभव की जा सकती है।

मध्यकाल तक स्त्री-जीवन सामान्यतः मानव समाज की आधारभूत संस्था परिवार तक ही सीमित था। पारिवारिक संरचना को सुदृढ़ करने के लिए स्त्री-विमर्श को एक ऐसा मोड़ दे दिया गया जिसमें स्त्री व्यक्तित्व के सहज विकास की पूर्णतः उपेक्षा थी। सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं के रचनातंत्र के कथासूत्रों के माध्यम से स्त्री-जीवन की पीड़ाओं को स्पष्ट रूप से उभारा और उसे आदिकालीन साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री-विमर्श संबंधी उस काव्य चेतना से जोड़ा जो रासो काव्य में दबे स्वर में दिखाई दे रही थी। सूफी काव्य धारा के अमर कवि जायसी अपनी रचना पद्मावत में कथासूत्रों से जिस रचनातंत्र की रचना करते हैं वह आदि से अन्त तक स्त्री-विमर्श के चारों ओर घूमता है। जहाँ पृथ्वीराज रासो में पद्मावती पुरुष प्रधान समाज के निरंकुश तंत्र को चुनौती देती हुई, अपने अस्तित्व को प्रतिष्ठित करती हुई स्त्री की वैयक्तिक पहचान और स्त्री-मुक्ति आन्दोलन की प्रेरणा सी दिखाई देती है वहीं पद्मावत में पदमावती के रूप में जायसी स्त्री अस्मिता को केन्द्र में रखकर स्त्री-विमर्श को सही दिशा दिखा पाने के लिए सशक्त आधार तैयार करते हैं। यह कथा पुरुष प्रधान समाज में स्त्री अस्मिता के सन्दर्भ में अनेक प्रश्न खड़े करके स्त्री-विमर्श को गति प्रदान करती है। जिसकी गूँज हमें आधुनिक काल की छायावादी कृति कामायनी तक में दिखाई देती है।

हिन्दी रामभक्ति काव्य धारा के पुरोधा तुलसीदास स्त्री-विमर्श के अनेक आयामों को लेकर अपनी राम कथा का ताना-बाना बुनते हैं। वहाँ कथा सूत्र तो परम्परा से गृहीत हैं लेकिन रचनातंत्र और रचना रहस्य तुलसी का अपना है। कहीं तो वे नारी को पशु के समान मानते हैं ''ढ़ोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी।'' और कहीं वे नारी अस्मिता से जुड़े विविध प्रसंगों को उठाकर स्त्री-विमर्श की धारा को कई आयाम देते हैं। अपनी रचना 'रामचरितमानस' में सीता स्वयंवर, सीता का वनगमन, सूपड़खाँ, सीता हरण प्रसंग, अहिल्या प्रसंग, तारा, मन्दोदरी आदि के प्रसंग स्त्री-विमर्श के विविध आयामों की बड़े सशक्त ढंग से व्यंजना करते हैं। तुलसी जानते हैं कि शील के नाम पर नारी की मानसिकता को किस प्रकार जकड़ दिया गया है कि उसके मन में लड़की होने का अहसास उसे हमेशा विवशता का बोध कराता है। तुलसी की रामचरितमानस की सीता, राम से विवाह करना चाहती है लेकिन पिता की असंगत हठ को लेकर शंकित मन में उठता उनका करुण क्रन्दन नारी जीवन की विवशता की कथा कह रहा है।

सूरदास के साहित्य 'सूरसागर' में वर्णित भ्रमरगीत प्रकरण नारी-विमर्श का एक सशक्त बिन्दु है। यदि इन प्रकरणों को देखा जाए तो आज भी ऐसे धूर्त पुरुष मिलते हैं जो पढ़ -लिख कर अच्छा पद प्राप्त करते ही अपनी अशिक्षित, ग्रामीण पूर्व परिणीता को धोखे में छोड़कर उसके विश्वास को तोड़ते हुए उसे उसकी नियति पर छोड़ देते हैं। उनके साथ समाज में ऐसी कुब्जाएं भी हैं जो नारी के अधिकारों पर आघात करके ऐसे पुरुष को अपनी धूर्तता के जाल में फंसा लेती हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि पूर्वमध्यकालीन हिन्दी भक्ति काव्यधारा आध्यात्मिक चेतना पर आधारित कोरा भाव विलास ही नहीं, उसमें कहीं वाच्यार्थ में तो कहीं प्रतीकार्थ में सामाजिक चिन्ताओं का सन्निवेश है और उसमें भी विशेषकर नारी जीवन की विषमताओं का जो नारी-विमर्श की धारा को युगानुरूप निरन्तर गति देती है।

भक्तिकाल में स्त्री कवयित्रियों ने भी साहित्य की रचना की थी। भक्तिकाल में उमा, पार्वती, मुक्ताबाई, रत्नावली, दयाबाई, सहजोबाई आदि लेखिकाओं का नाम उल्लेखनीय है। मीरा से पूर्व सन्तमत से प्रभावित होकर सहजोबाई और दयाबाई ने अच्छे पद लिखे थे ''अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चरणदास की शिष्या दयाबाई और सहजोबाई की निर्गुण भक्ति-भावना की रचनाओं को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। ये दोनों

चचेरी बहिनें थीं। सहजोबाई दिल्ली के हरिप्रसाद वैश्य की पुत्री थीं। इनका जन्म 1743 ई. में हुआ था। इनकी रचनाएं 'सहज प्रकाश' में संग्रहीत हैं।''[3]

मध्यकालीन सन्तों ने जाति-पाँति, ऊँच-नीच, छुआ-छूत की सारी वर्गवादी व्यवस्था को भगवान के नाम पर ललकारा था- भगवान की निगाहों में कहीं कोई भेद नहीं है। भक्ति आन्दोलन वर्ण और वर्ग के शिकंजों से मुक्ति का पहला गम्भीर आन्दोलन है और यही विद्रोह है मीरा का। मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई जैसे स्वरों में भगवान को ही अपना वास्तविक प्रेमी और पति मानकर वह बाकी सारी सामाजिक मान्यताओं पति-परिवार, शील-सतीत्व सभी को अस्वीकार करती हैं ''मीराबाई ने भक्ति और माधुर्य तत्त्व के माध्यम से लिंगीय भेदभाव और सामाजिक वैषम्य दोनों को एक साथ चुनौती दी। स्त्री के सामाजिक अधिकारों खासकर स्त्री के मन एवं तन पर स्त्री के स्वामित्व की वकालत करने वाली वह पहली भारतीय लेखिका हैं। स्त्री जो उचित समझे उसे वह करने का अधिकार है। इसके लिए उसे लोकनिन्दा या पारिवारिक कटुता या पुरुष वर्चस्व के दबावों के आगे समर्पण नहीं करना चाहिए।''[4]

मध्यकाल में अकेली एक मीरा थी जिसने इस शोषक व्यवस्था को आमूल रूप से बदलने का साहस किया था। मीरा ने राज परिवार की झूठी शान, युवा विधवा की आजीवन बन्दिनी की सी स्थिति और धर्म व भक्ति में पुरुष के एकाधिकार को तोड़ा था ''मीरा तत्कालीन प्रथा के अनुसार सती नहीं हुई क्योंकि वे स्वयं को अजर-अमर स्वामी की चिरसुहागिनी मानती थी।''[5]

मीराबाई की कविताएं पहली बार परम्परागत धारणा पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं। स्त्री के व्यक्तित्व को रूपांतरित करने का मार्ग प्रशस्त करती हैं। स्त्री की शक्ति, उसके प्यार की शक्ति, उसके दुःख और आनन्द का सामाजिक तौर पर पहली बार मीराबाई ने रूपायन किया। मीरा का समूचा काव्य इसी आधार पर सामंती विचारधारा का विरोधी है, स्त्रीवादी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं ''मीराबाई का नाम भारत के प्रधान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यासजी, मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है।''[6]

मीरा इसलिए विद्रोहिणी हैं कि उन्होंने ईश्वर और भक्ति के माध्यम से अपने को इन संबंधों से मुक्त करने का प्रयास किया था ''पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के साथ किस तरह के जुल्म होते हैं और परिवारीजनों का रवैया किस तरह अमानवीय होता है उसे सामाजिक तौर पर अभिव्यक्त करने वाली मीरा पहली भारतीय लेखिका हैं। स्त्री का दुःख उत्पीड़न एवं दमन हमेशा निजी रहा है। स्त्रियाँ इसे छिपाती रही हैं। मीरा ने कुछ भी न छिपाकर सबको उजागर कर दिया।''[7] मीराबाई के भक्ति-पदों की सर्वजनमनोहारिणी रसवत्ता ने उन्हें अल्पकाल में ही इतना लोकप्रिय बना दिया कि विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न वर्गों के सन्तों, भक्तों, कवियों तथा रचनाकारों ने अपनी कृतियों में उनकी चर्चा कई रूपों में की है।

हिन्दी साहित्य में मीरा के पद ज़रूर ही स्त्री-अस्तित्व की पहचान कराने में समर्थ होते मालूम पड़ते हैं। मीरा सबसे पहली ऐसी कवयित्री हैं जो समाज के बनाए हुए परम्परागत मूल्यों का निर्वाह नहीं करती हैं और सबसे संघर्ष कर अपनी कृष्ण भक्ति की पराकाष्ठा प्राप्त कर अपने लक्ष्य को हासिल करती हैं। पुरुष प्रधान समाज मे नारी की दुर्दशा के अनेक उदाहरण मध्यकाल में मिलते हैं। स्त्री को इस दुर्दशा से निकालकर समान स्थिति में लाने का काम भक्ति आन्दोलन ने किया। मध्यकाल में सन्त भक्तों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने भक्ति आन्दोलन में स्त्री-पुरुष की समानता को लेकर लिखा है ''भक्ति आन्दोलन नारी को भी घर से उसी तरह बाहर आने का निमंत्रण देता था जिस प्रकार पुरुष को। भक्ति की दृष्टि में नारी और पुरुष में अंतर नहीं। दोनों अंशी के अंश हैं। लेकिन सामंती व्यवस्था नारी को-विशेषतः उच्च वर्ग की नारी को घर से बाहर निकलने की आज्ञा नहीं दे सकती थी। मीरा के भक्त जीवन का यही मूल भौतिक संघर्ष था। वह यदि निम्न वर्ण में जन्मी होती तो उनके बाहर निकलने पर रूढ़िग्रस्त समाज इतना कुपित और क्षुब्ध न होता। वह आन्दोलन कैसा था, जो राणाकुल की स्त्री को बाहर निकालने की प्रेरणा देता था।''[8]

उत्तर मध्यकाल यानि रीतिकाल में हिन्दी साहित्य के केन्द्र में स्त्री रही है। लेकिन वहाँ इसका स्वरूप कुछ और ही था। रीतिकाल के कवियों ने नारी को सिर्फ विलास की ही वस्तु समझा था। उन्होंने उसकी भावनाओं और संवेदनाओं को नहीं बल्कि उसकी शारीरिक बनावट को केन्द्र में रखकर काव्य की रचना की। रीतिकाल में कवियों की नायिका 'राधा' जिसे प्रेम का दूसरा रूप ही समझा जाता है, उसके बहाने पूरे स्त्री शरीर की जैसे रचना की हो। प्रेम के बाह्य रूप को ही उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया अर्थात् इन काव्य ग्रन्थों में Sexual pleasure की अधिक अपील की गई है। औरत के शारीरिक स्वरूप का शूक्ष्मता से विश्लेषण किया गया है। नायिका भेद, उसके नख से शिख तक का वर्णन इस काल में किया गया है। बिहारी इस युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं जो गागर में सागर तक भर देते हैं। उन्होंने भी नारी को शरीर के रूप में ही देखा ''वास्तव

में नारी के प्रति इन कवियों की दृष्टि सामन्तीय ही रही है। ये उसे पुरुष के समकक्ष समाज की चेतन इकाई अथवा पुरुष का अर्द्धांग न समझकर भोग्य सम्पत्ति के समान उसे भोग का मात्र उपकरण समझते हैं।''[9]

रीतिकाल में स्त्री केवल भोग की वस्तु थी। वह न तो माँ थी, न बेटी थी, न बहू थी, न बहन थी ''रीतिकाल में स्त्री को भोग की वस्तु के रूप में देखा गया। इसी भोगवादी दृष्टि का साहित्य में भी जयघोष हुआ। स्त्री की उन तमाम क्रियाओं को रूपायित किया गया जिनसे भोगवाद को बढ़ावा मिले।''[10]

रीतिकाल में नख-शिख वर्णन पर ही पुरुष लेखकों ने सबसे ज्यादा रुचि दिखाई है। इन रचनाओं में नायक-नायिका भेद का रूपायन ज्यादा मिलता है ''विलासिता की प्रधानता और सामन्तीय प्रभाव के कारण ही इन लोगों की सौन्दर्य भावना भी विषयीगत न होकर विषयगत रही है-नारी के बाह्य रूप की परिचायक अंगों की बनावट में ही इनकी दृष्टि उलसी रही है, उसके आन्तरिक गुणों तक नहीं पहुँच पायी।''[11]

रीतिकाल में शेख रंगरेजिन भी अच्छी कविता करती थीं। कवि आलम के एक अधूरे दोहे को रंगरेजिन ने पूरा किया था। आलम उसके काव्य कौशल से इतने प्रभावित हुए कि हिन्दू से मुसलमान बनकर उसी के हो गए ''आलम ने एक बार उसे पगड़ी रंगने को दी जिसकी खूँट में भूल से कागज़ का एक चिट बँधा चला गया। उस चिट में दोहे की यह आधी पंक्ति लिखी थी 'कनक छरी-सी कामिनी काहे को कटि छीन'। शेख ने इस तरह दोहा पूरा करके 'कटि को कंचन काटि बिधि कुचन मध्य धरि दीन' उस चिट को फिर ज्यों-की-त्यों पगड़ी की खूँट में बाँधकर लौटा दिया।''[12]

आधुनिक काल में आकर स्त्रियों को भी अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता मिली साथ ही पुरुष लेखक भी स्त्री-विमर्श को लेखर सतर्क हो गए। अब वे न केवल उनके प्रति सहानुभूति दिखाते हैं बल्कि स्त्री अधिकारों की समानता की बात करते हैं। आरम्भकालीन कथा साहित्य में बंगमहिला, ऊषा देवी मित्रा, कमला चौधरी, होमवती देवी, सत्यवती मलिक, शिवरानी देवी आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बंगमहिला के बारे में डॉ. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है ''उन्होंने बहुत-सी कहानियों का बंगला से अनुवाद तो किया ही, हिंदी में कुछ मौलिक कहानियाँ भी लिखी जिनमें से एक थी 'दुलाईवाली' जो संवत् 1964 की 'सरस्वती' (भाग 8, संख्या 5) में प्रकाशित हुई।''[13]

स्त्रियों को शिक्षित करने के उद्देश्य से अनेक पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं ''संवत् 1931 में भारतेंदुजी ने स्त्री शिक्षा के लिए 'बालबोधिनी' निकाली थी।''[14] भारतेन्दु युग के लेखक प्रताप नारायण मिश्र भी स्त्रियों की सामाजिक दुर्दशा से दुखी थे। 'मन की लहर' में प्रतापनारायण की दृष्टि बाल-विधवाओं की करुण दशा की ओर गयी है, 'कौन करेजो नहिं कसकत सुनि बिपति बालविधवन की'।

भारतीय जनमानस की यह विशेषता रही है कि वह घर के बाहर स्त्री पर होने वाले जुल्मों की निन्दा करता है किन्तु स्वयं घर में स्त्री पर जुल्म करता है। घर के बाहर दिखाने के लिए स्त्री के प्रति अलग नज़रिया और घर के अन्दर अलग नज़रिया। ये दो मुखौटे वस्तुतः मध्यवर्ग की विशेषताएं हैं ''प्रत्येक भारतीय पुरुष चाहे वह जितना सुशिक्षित हो, अपने पुराने संस्कारों से इतना दूर नहीं हो सका है कि अपनी पत्नी को अपनी प्रदर्शिनी न समझे। उसकी विद्या, उसकी बुद्धि, उसका कला-कौशल और उसका सौन्दर्य सब उसकी आत्मश्लाघा के साधन मात्र हैं।''[15]

आश्चर्य की बात यह है कि भारतीय नारियों की राजनीति, समाज, धर्म, संगीत, नृत्य, साहित्य, दर्शन, विज्ञान, प्रशासन आदि में लम्बी नाम शृंखला होने के बाद भी पुरुष भारतीय स्त्रियों को घर के अन्दर ही कैद रखना चाहते हैं ''भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही वह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है।''[16]

परंपरागत परिवार में आदर्श पत्नी वही है जो पुरुष के अत्याचार सहे, पति को परमेश्वर समझे। पति की हर आज्ञा का पालन करे। पुरुष स्त्री को बंधनों में जकड़कर रखना चाहता है और स्वयं निर्बाध गति से इधर-उधर घूमता रहता है ''जो बन्धन पुरुषों की स्वेच्छाचारिता के लिए इतने शिथिल होते हैं कि उन्हें बन्धन का अनुभव ही नहीं होता वे ही बन्धन स्त्रियों की परावलम्बिनी दासता में इस प्रकार कस देते हैं कि उनकी सारी जीवनी शक्ति शुष्क और जीवन नीरस हो जाता हैं।''[17] वहीं महादेवी वर्मा ऐसी पहली कवयित्री हैं जिन्होंने पूरी स्त्री जाति की संवेदनाओं को, उनके दुःखों को अपने काव्य का लक्ष्य बनाया। स्त्री काव्य परम्परा की सबसे प्रमुख लेखिका महादेवी वर्मा हैं। महादेवी वर्मा के आलोचनात्मक गद्य 'शृंखला की कड़ियाँ' को हिन्दी का पहला स्त्रीवादी साहित्यशास्त्र कहा जा सकता है। महादेवी वर्मा प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री की सफलता को अंकित करते हुए कहती हैं कि पुरुष की समानता कर स्त्री ने यह प्रमाणित कर दिया है कि स्त्री किसी भी रूप में पुरुष से कमजोर नहीं है।

महादेवी ने स्त्री की अस्मिता के लिए अपनी तरह से

संघर्ष किया। लेखिका के लेखन रूप में 'शृंखला की कड़ियाँ' हिन्दी स्त्रीवादी लेखन का अप्रतिमा उदाहरण है। शृंखला की प्रत्येक कड़ियाँ स्त्री की गुलामी की कड़ियाँ हैं। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने 'शृंखला की कड़ियाँ' का महत्त्व बताते हुए कहा है कि ''ऐसा लगता है कि नारीवादी और अन्य लेखिकाएं भी 'शृंखला की कड़ियाँ' के महत्त्व से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। वे सिमोन द बोउवार की किताब पढ़ती हैं, लेकिन महादेवी वर्मा की 'शृंखला की कड़ियाँ' नहीं क्योंकि वह हिन्दी में लिखी गई है, फ्रेन्च या अंग्रेज़ी में नहीं।''[18]

महादेवी वर्मा ने 'शृंखला की कड़ियाँ' लिखकर सच्चे अर्थों में स्त्री समस्याओं का गहराई से विवेचन किया है। आज महिला लेखन के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं। अपने लेखन को महज स्त्री देह तक सीमित न करके उसे समाज के वृहत्तर सरोकारों से जोड़ना होगा। महादेवी वर्मा ने शृंखला की कड़ियाँ में बन्धनों से जकड़ी नारी को चेताते हुए लिखा था कि इतना ध्यान रखना चाहिए कि बेड़ियों के साथ ही उस अस्त्र से बंदी यदि पैर भी काट डालेगा तो उसकी मुक्ति की आशा, दुराशा मात्र रह जाएगी। वे स्त्रियों को कुटुम्ब, समाज, नगर तथा राष्ट्र की विशिष्ट सदस्य मानती हैं। वे कहती हैं कि स्त्री की प्रत्येक क्रिया के प्रतिफल से समाज आगे भी बढ़ सकता है और समाज के विकास में बाधा भी आ सकती है। इसीलिए स्त्री अपने कर्त्तव्य की गुरुता को भलीभांति हृदयंगम कर, अपने लक्ष्य स्थिर कर सके तो शृंखला की कड़ियाँ हमारी गरिमा से गलकर मोम बन सकती हैं। महादेवी वर्मा सामाजिक जीवन को सुखद और मंगलमय बनाना चाहती हैं ''जिस प्रकार घटा स्वयं को गलाकर सृष्टि को सुख और शीतलता प्रदान करती है या दीपक स्वयं जलकर राख हो जाता है किन्तु परिवेश को आलोकित करता है, उसी प्रकार महादेवी स्वयं साधना की आग में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद और मंगलमय बनाना चाहती हैं।''[19]

धर्मप्राण युग ने स्त्री को धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से उन्नत स्थान देकर ही अपने कर्त्तव्य की इति समझ ली, उसकी व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जा सका। मातृत्व की गरिमा से गुरु और पत्नीत्व के सौभाग्य से ऐश्वर्यशालिनी होकर भी भारतीय नारी अपने व्यावहारिक जीवन में सबसे अधिक क्षुद्र और रंक कैसे रह सकी, यही आश्चर्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल महादेवी वर्मा के काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं ''गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगिमा। जगह-जगह ऐसी ढ़ली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।''[20]

आधुनिक काल का छायावाद युग जैसे स्त्री-विमर्श की आधारभूमि कहा जा सकता है। जिसमें जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' जैसे महाकाव्य की रचना कर स्त्री-विमर्श की आधार भूमि रखी। प्रसाद का कामायनी वैसे तो अप्रत्यक्ष रूप में मानव प्रवृत्तियों उसकी वृत्तियों का काव्य है जिसमें श्रद्धा और इड़ा सम्पूर्ण मानव जाति की स्त्री रूपी प्रवृत्ति को उदघोषित करती हैं। इसमें प्रसाद ने स्त्री शक्ति के बारे में व्याख्यायित किया है। वह जगत को बनाने वाली सृजनकर्ता है पुरुषों की आदि शक्ति है, सारे जगत की संचालनकर्ता वही है। उसकी चंचलता में ही जगत क्रियाशील है। लेकिन वह हमेशा दुखी रहती है व दुख को हँसते-हँसते सहती रहती है। स्त्री पराधीनता को अपनी नियति मान लेती है। जिसका पुरुष समाज फायदा उठा लेता है जैसा कि काव्य का नायक मनु करता है। प्रसाद ने अपने काव्य में स्त्री चरित्र की अनुभूतियों, कामनाओं और आकांक्षाओं का अनेक रूप में वर्णन किया है। यह मनोवैज्ञानिक काव्य है जिसकी रचना 1935 ई. में की गई।

वहीं इस युग के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से एक स्त्री की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक सभी समस्याओं को साहित्यकर्ताओं के सामने रखा। प्रेमचन्द ही ऐसे पहले लेखक हैं जिन्हें स्त्री-विमर्श को हिन्दी साहित्य में गति प्रदान करने का श्रेय जाता है। प्रेमचन्द सबसे पहले स्त्री-विमर्श की आम समस्याओं उनके कारणों को समाज के सामने रखते हैं तथा भारतीय नारी जगत को अपने साहित्य का लक्ष्य बनाकर उसे उसकी ताकत का अहसास कराते हैं। 'निर्मला' उपन्यास के माध्यम से अनमेल विवाह से होने वाले विनाश को दिखाया है। वहीं सेवासदन वेश्वावृत्ति से जूझती महिलाओं की मानसिक वेदना को दर्शाता है। यहीं से हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री को मुख्य विषय बनाया गया। उससे पहले लिखे साहित्य में स्त्री की विवशता पर सिर्फ सहानुभूति दर्शायी जाती थी लेकिन प्रेमचन्द ने सबसे पहले उन आदर्शों की पट्टी को हटाया और यथार्थ के प्रश्नों को मुखर किया। वे भी उनकी समस्याओं का उपाय बताने में असफल रहे लेकिन उन्होंने आगे आने वाले साहित्यकारों के लिए एक आधार भूमि दी जिनसे प्रेरित होकर अनेक रचनाकार स्त्री-विमर्श संबंधी कथा साहित्य की रचना करने लगे।

राष्ट्रभक्ति की कविता लिखने में सुभद्रा कुमारी चौहान का अन्यतम स्थान है। झाँसी की रानी, जलियावाले बाग में बसंत, सेनानी का स्वागत आदि महत्त्वपूर्ण कविताएं हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' कविता तो सामान्य जनता

में बहुत प्रसिद्ध हुई है। सुभद्रा कुमारी चौहान ने स्त्री को केन्द्र में रखकर अनेक कहानियाँ भी लिखीं। उनकी कहानियाँ सामाजिक-पारिवारिक जीवन के व्यावहारिक चित्रण के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं 'बिखरे मोती' और 'उन्मादिनी' में संगृहीत कहानियों में उन्होंने अधिकतर भारतीय नारी की परिस्थितियों, समस्याओं तथा भावनाओं का सजग चित्रण किया है।

इस्मत शायद पहली भारतीय कथाकार हैं जिसकी कथा नारियाँ न आत्महत्याएँ करती हैं, न अध्यात्म में जाती हैं, न स्थितियों को स्वीकार करके आँसू बहाती हैं। वे अपनी देह और मन की बात को साहस से कहती हैं और समाज के पुरुष-निर्धारित फैसलों में लगभग शहीद की तरह उभरती हैं। उनसे पहले महादेवी वर्मा ने शृंखला की कडियाँ में नारी की जिन स्थितियों का बौद्धिक विश्लेषण किया है, इस्मत ने उन्हीं अनुभवों को कहानियों के रूप में अभिव्यक्ति दी है- शायद एक-दूसरे से अनजान होकर।

स्त्री के मन एवं ज़िन्दगी के प्रामाणिक यथार्थ के मूल्यगत तनावों को वैयक्तिक दृष्टिकोण से मनू भण्डारी, ऊषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती और शिवानी ने रूपायित किया। भगवती चरण वर्मा और वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से स्त्री-विमर्श को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'पुनर्नवा' एवं यशपाल का 'दिव्या' दोनों ऐसे उपन्यास हैं जो लिखे तो गए हैं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नारी विमर्श के महाख्यान हैं।

जैनेन्द्र कुमार निश्चित ही हमारी साहित्यिक विरासत के विशिष्ट स्तम्भ हैं। उनके साहित्य के केन्द्र में स्त्री ही है। उनका पहला उपन्यास 'परख' बाल वैधव्य जैसी महत्त्वपूर्ण स्त्री समस्या पर केन्द्रित है तो अन्तिम रचना 'दशार्क' देह व्यापार पर केन्द्रित है। सुनीता और त्यागपत्र में ऐसी स्त्रियों की कहानी है जो परम्परा और रूढ़ियों से विद्रोह करके अपने मार्ग स्वयं निर्धारित करती हैं। त्यागपत्र आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का सशक्त 'स्त्री-विमर्श' केन्द्रित उपन्यास है। मृणाल हिन्दी साहित्य की पहली स्त्री है जो नैतिकता की परम्परागत मान्यता को नकार देती है। स्त्री-पुरुष संबंधों और दाम्पत्य के खोखलेपन को जैनेन्द्र ने बड़ी सच्चाई से प्रस्तुत किया है।

कुछ महिला रचनाकारों ने स्त्रियों द्वारा लिखे गए साहित्य को अधिक प्रामाणिक माना है। क्योंकि कुछ अनुभव केवल स्त्री को ही होते है। इन अनुभवों को साहित्य के माध्यम से केवल स्त्री ही व्यक्त कर सकती है। अनुभव की प्रमाणिकता इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के कथा लेखन में स्त्रियों के लेखन की एक लम्बी परम्परा है। जिसमें कहानी और उपन्यास लेखिकाएं आदि शामिल हैं। हिन्दी कथालेखन के क्षेत्र में महिला कथाकारों का पदार्पण राजबालाघोष (बंग महिला) से माना जाता है। स्त्री-विमर्श के सन्दर्भ में जिन कथाकार महिलाओं के नाम प्रमुख हैं उनमें कुसुम अंसल की 'वह आया था', 'धुएं की इमानदारी', ममता कालिया की 'बोलने वाली औरत', 'निर्मोही', मृदुला गर्ग की 'समागम' मृणाल पाण्डे की 'चार दिन की जवानी तेरी', 'एक स्त्री का विदा गीत' मैत्रेयी पुष्पा की 'चिन्हार', 'गोमा हँसती है' और 'लालमनियाँ', चित्रा मुदगल की 'लपटें', 'केंचुल' और 'जिनावर' नासिरा शर्मा की 'बुतखाना', 'पत्थर गली', दूसरा ताजमहल' तथा 'शामी कागज़', नमिता सिंह की 'नील गाय की आँखें' तथा 'जंगल गाथा', अलका की 'दूसरी कहानी तथा कहानी की तलाश' और जया जादवानी की 'मुझे ही होना है बार-बार' तथा अन्दर के पानियों मे कोई सपना काँपता है', मन्नू भण्डारी की 'एखने आकाश नाई', शिवानी की 'रति विलाप', ऊषा प्रियंवदा की 'वापसी', मालती जोशी की 'एक घर सपनों का' तथा 'मुठ्ठी भर खुशियाँ', शशि प्रभा शास्त्री की 'नया संसार', दीप्ति खण्डेलवाल की 'एक और कब्र', मेहरुन्निसा परवेज की 'सीढ़ियों का ठेला', कृष्णा अग्निहोत्री की 'सौदा', इंदुबाली की 'मैं कायर मैं', सूर्यबाला की 'एक इन्द्रधनुष, 'जुबैदा के नाम' तथा राजी सेठ की 'अनावृत्त कौन' आदि स्त्री-विमर्श से संबंधित कहानियाँ हैं।

कृष्णा सोबती का उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के', ऊषा प्रियंवदा का उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका', मृदुला गर्ग का उपन्यास 'चितकोबरा', नासिरा शर्मा का उपन्यास 'शाल्मली' प्रभा खेतना का उपन्यास 'छिन्नामस्ता', मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'चाक' आदि हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श के संदर्भ में प्रमुख उपन्यास हैं।

नासिरा शर्मा के उपन्यास 'शाल्मली' में स्त्री-मुक्ति की अवधारणा उपन्यास की मुख्य पात्र शाल्मली के माध्यम से उजागर होती है। शाल्मली अपनी मित्र सरोज से कहती है ''मेरी नज़र में सही नारी-मुक्ति और स्वतंत्रता, समाज की सोच और स्त्री की स्थिति को बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरुष तुमसे टकरायेगा। तलाक लेना समस्या का समाधान नहीं है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की सामाजिक परिकल्पना को ही बदलना है।''[21]

बदलते समय में 'मित्रों मरजानी' की मित्रों को न जीविका की चिन्ता है न समाज में परिवर्तन की आकाँक्षा वह परम्परागत देवी बनकर नहीं जीना चाहती, वह हाड़-माँस की ऐसी नारी है जो धर्म और संस्कृति के नाम पर दबने वाली या कुंठाओं का शिकार बनने वाली नहीं वरन् अपने शरीर की

आवश्यकताओं को खुलकर स्वीकारने और पूरा करने वाली है। व्यवस्था को बिना तोड़े अपनी जगह बना लेने में कृष्णा जी के चरित्रों का जवाब नहीं चाहे वह डार से बिछुड़ी की पाशो हो या सूरजमुखी अंधेरे की रत्ती। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति, उनकी ज़िन्दगी और आकांक्षाओं को मित्रो के माध्यम से लेखिका ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है ''मित्रो पहले सास को घूरती रही। फिर पालथी मारकर नीचे बैठ गई और मुण्डी हिला-हिला बोली, 'भिगो-भिगो कर और मारो अम्मा पाँच-सात क्या मेरे तो सौ-पचास होंगे।''[22] मित्रो हिन्दी की अकेली ऐसी कथा-नारी लगती है जो सदियों से नारी पर लादे गए संस्कारों-सम्बन्धों, सुन्दर-सुन्दर उपमाओं को ललकारती, मुँह चिढ़ाती और उन्हें झुठलाती हुई अपनी मूलभूत ज़रूरत और जबान के साथ हमारे सामने आ खड़ी हुई हो।

इस प्रकार महिला लेखिकाओं ने नारी जीवन से जुड़े यथार्थ के विभिन्न स्तर प्रस्तुत किए। गहरी संवेदना, सामाजिक रूढ़ियों, के खिलाफ बुलंद स्वर नारी त्रासदी की गहन अनुभूति, प्रेम, परिवार और दाम्पत्य मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर सूक्ष्मदृष्टि और महिलाओं पर होने वाले शारीरिक और मानसिक अत्याचार की भुक्तभोगी यथार्थ महिला लेखन की प्रमुख विशेषता है। ये स्त्री लेखिकाएं सामाजिक व्यवस्था में संतुलन व परिवर्तन की संभावनाओं के मद्दे नज़र लेखन कार्य कर रही हैं।

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श की चर्चा पर्याप्त मात्रा में दिखाई देती है। महिला लेखिकाओं ने ही नहीं बल्कि पुरुष लेखकों ने भी साहित्य में स्त्री चिन्तन और अस्मिता की अभिव्यक्ति की है स्त्री-विमर्श, स्त्री-अस्मिता उसकी चेतना और अन्याय के प्रति विद्रोह की भावना तथा उसका स्वाभिमानी रूप उसके चिन्तन तथा व्यवहार को प्रकट करता है।

सन्दर्भ-

1. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2000, पृ. 44
2. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 92
3. सम्पादक-डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2003, पृ. 375
4. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ. 33
5. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 235
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृ. 124
7. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ. 35
8. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1989, पृ. 18
9. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 306
10. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ. 208
11. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 306
12. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 227
13. वही पृ. 345
14. वही पृ. 315
15. शृंखला की कड़ियाँ, पृ. 73
16. वही पृ. 72
17. वही पृ. 21
18. डॉ. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पूर्वोदय, दिल्ली, 2002, पृ. 179
19. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 553
20. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 490
21. नासिरा शर्मा, शाल्मली, पृ. 185
22. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1979 पृ. 84

शोध आलेख

प्रेमचन्द की सामाजिक दृष्टि पर गाँधीवाद का प्रभाव
(रंगभूमि और गोदान के संदर्भ में)

डॉ. सरिता रानी

''प्रेमचन्द का साहित्य मनुष्यता की थाती है। प्रेमचन्द युगीन भारतीय समाज का सच जानना हो या स्वाधीनता आंदोलन का, प्रेमचन्द के साहित्य से विश्वसनीय कोई दूसरा स्त्रोत नहीं है। ऐसा लगता है जैसे प्रेमचन्द ने बिना किसी लाग-लपेट के भारतीय समाज और स्वाधीनता आंदोलन को आईने के सामने रख दिया है।''[1]

''मुंशी प्रेमचन्द का भारतीय साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान है। प्रेमचन्द जिन दिनों अपना लेखन कार्य कर रहे थे, उन दिनों भारत के राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य को जिस एक व्यक्ति ने सर्वाधिक प्रभावित किया था वह महात्मा गाँधी थे। प्रेमचन्द के साहित्य पर गांधी जी का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। प्रेमचन्द अगर राजनीति के क्षेत्र में गाँधीजी के सत्याग्रह से प्रभावित थे तो सामाजिक क्षेत्र में उनके धर्म सम्बन्धी विचारों, छूत-अछूत के प्रश्न पर उनके स्टैंड और स्त्री शिक्षा पर उनके विचारों से प्रभावित थे।''[2]

प्रेमचन्द एक प्रखर सामाजिक चिन्तक थे। वे एक रचनाशील लेखक के रूप में भारतीय समाज के हर पहलू पर, हर असंगति पर और हर अवरोध पर टिप्पणी करते हैं। उनकी व्यापक दृष्टि से शायद ही समाज का कोई कोना ओझल रहा हो। प्रेमचन्द ने जिन सामाजिक समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, वे सभी हमारे युग के महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विषय है। चाहे धर्म और साम्प्रदायिकता का प्रश्न हो, चाहे अछूत समस्या हो, चाहे स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का प्रश्न हो। प्रेमचन्द हर मुद्दे पर अपनी प्रखर जन-तान्त्रिक संवेदना के साथ प्रतिक्रिया करते है।

(1)

हिन्दू-समाज व्यवस्था की एक जटिल उलझन जाति-व्यवस्था को लेकर है। अपनी सभ्यता के उषा काल में आर्यों ने जाति की व्यवस्था गुण और कर्म के आधार पर की थी। किन्तु समाज में ज्ञानोपलब्धि करने वाले ब्राह्मणों के महत्त्व वर्द्धन के साथ क्रमशः जाति व्यवस्था गुण और कर्म पर स्थित न रहकर जन्म और पैतृक परम्परा पर अवस्थित हुई।

वर्ण व्यवस्था की दृष्टि से अछूत हिन्दुओं के चौथे वर्ण 'शूद्र' के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार से ये भी हिन्दु जाति के ही एक अंग हैं। किन्तु इनकी समाज में बड़ी दयनीय स्थिति बनी हुई थी। एक सवर्ण हिन्दू जानवरों को प्यार कर सकता था। उसे अपने घर के अन्दर रख कर स्वयं उसकी सेवा करता था किन्तु अछूत कही जाने वाली हिन्दू माज की ही जाति जो जन्म की दृष्टि से सवर्ण हिन्दुओं के ही समान मनुष्य योनी में जन्म लिए हुए है उस सेवापरायण जाति की सामाजिक स्थिति जानवरों से भी बदत्तर थी। वे आपको छू नहीं सकते। छू जाने पर आप अपवित्र हो जाएँगे और पुनः पवित्र होने के लिए स्नान करना पड़ेगा। वे आपके घरों में घुस नहीं सकते घर अपवित्र हो जाएगा। इस तरह से वे सब तरह से सर्वथा हिन्दुओं के द्वारा उपेक्षित थे। परिणाम यह हुआ कि जब ईसाई धर्म प्रचार अभियान प्रारम्भ हुआ तो बहुत से अछूतों ने हिन्दू धर्म छोड़कर ईसाइयत ग्रहण कर ली। इस प्रकार से दिनों-दिन हिन्दू जाति की शक्ति क्षीण होने लगी थी। आधुनिक युग में स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी तथा अन्य समाज सुधारकों की दृष्टि इस ओर गई और इसके समाधान के लिए उन्होंने हरिजनों द्वार आन्दोलन चलाया। आर्य समाज का इस दिशा में विशेष सराहनीय कार्य रहा। प्रेमचन्द एक सजग साहित्यकार होने के कारण इन आन्दोलनों से अछूते नहीं रह सके। उन्होंने दलितों की पीड़ा और शोषण से होने वाले कष्ट का अनुभव किया और अपने साहित्य के माध्यम से इनकी स्थिति को सुधारने का पूरा प्रयत्न किया।

'रंगभूमि' मे ईसाई जॉन सेवक, उसकी पत्नी मिसेज सेवक भारत में रहते हुए भी हिन्दुओं से ईर्ष्या-द्वेष रखते हैं। वे हिन्दुओं को धोखेबाज, स्वार्थी तथा अपना दुश्मन समझते हैं और अपने धर्म, नीति-नीति, आहार-व्यवहार को श्रेष्ठ मानते हैं।

'जात-पात' की समस्या से निबटने के लिए ही प्रेमचन्द ने 'अंधे चमार सूरदास' को अपने उपन्यास 'रंगभूमि' में नायक बनाकर क्रांति का प्रारम्भ किया। उसने इस धारणा को तोड़ा कि उच्च कुलीन वर्ग या सवर्ण जाति के लोग ही नायक के गुणों से भरपूर हैं। 'गोदान' का गरीब कृषक 'होरी' जात-पात के

बंधनों को तोड़कर उपन्यास का महानायक बन गया है।

गाँधी जी ने भी कहा था- ''अस्पृश्यता या छुआछूत अगर हिन्दू धर्म में हो तो मुझे कहना पड़ेगा कि उसमें शैतानियत भरी हुई है, धर्म नहीं, पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू-धर्म यह सब कुछ नहीं है। जब तक प्रत्येक हिन्दू अपने चमार-भंगी आदि भाइयों को भी अपने सगे भाई की तरह हिन्दू न समझेंगे, तब तक मैं उन्हें हिन्दू ही नहीं समझूंगा। मनुष्य तिरस्कार और दया, इन दो चीज़ों के साथ नहीं रह सकता।''[3]

'प्रेमचन्द' भी गाँधी जी की भाँति जात-पात को नहीं मानते, व्यक्ति अपने कर्म से उच्च और निम्न बनता है। एक चमार जो सच्चा है वह भी उनकी दृष्टि में आदर के योग्य है जबकि एक ब्राह्मण यदि वह लम्पट, दगाबाज, झूठा है तो आदर के योग्य नहीं हो सकता। 'गोदान' में सीलिया चमारिन, मातादीन ब्राह्मण की रखैल है। मातादीन ने उसे सुनहरे सपने दिखाये हैं किन्तु उसके पिता दातादीन को नीच सीलिया फूटी आँख नहीं भाती। वह उसका अपमान करता है। तब सीलिया की माँ कहती है कि- ''वाह-वाह पण्डित खूब नियाब करते हो। तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गयी होती और तुम इसी तरह की बातें करते तो देखते। हम चमार हैं इसलिए हमारी कोई इज्ज़त नहीं ? हम सीलिया को अकेले न ले जाएंगे, उसके साथ मातादीन को भी ले जाएंगे, जिसने उसकी इज्ज़त बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे।''[4] ब्राह्मणों ने समाज में जात-पात का जो पाखण्ड फैला रखा है उसी पर कटाक्ष करने के लिए प्रेमचन्द ने मातादीन के मुँह में हड्डी ठूंसना और फिर उसका सच्चाई के रास्ते को अपनाने का प्रसंग लिखा है। सीलिया को भला-बुरा कहे जाने पर दो चमारों ने लपककर- ''मातादीन के हाथ पकड़ लिये, तीसरे ने झपटकर उसका जनेऊ तोड़ डाला। दो चमारों ने मातादीन के मुँह में एक बड़ी सी हड्डी का टुकड़ा डाल दिया। मातादीन ने दाँत जकड़ लिये; फिर भी वह घिनौनी वस्तु उसके होठों से तो लग ही गयी। मतली हुई और मुँह आप से आप खुल गया और हड्डी कण्ठ तक जा पहुँची।''[5]

मातादीन अपने धर्म में जाने के लिए आत्मशुद्धि के लिए काशी चला जाता है वहाँ पर काशी के पण्डितों ने यज्ञ-हवन करके, मातादीन को गौ मूत्र और गोबर खिलाकर शुद्ध किया। किन्तु इन सब ढकोसलों को देखकर उसे अपने आप से ग्लानि होने लगी। वह अपने जनेऊ को उतार कर पुरोहिती को गंगा में डुबो देता है। उसकी जाति के लोग प्रायश्चित के बाद भी उसे अपवित्र समझते हैं। तब वह फिर सिलिया के पास चला जाता है। वह कहता है कि - ''मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धरम पाले वहीं ब्राह्मण है, जो धरम से मुँह मोड़े वही चमार है।''[6]

'गोदान' में दातादीन के मन में जातीय अहं कितना उग्र है, वह होरी और गोबर के सम्मुख किस प्रकार ऐंठ कर कहता है कि- ''मगर यह समझ लो, मैं ब्राह्मण हूँ, मेरे रुपये हजम करके तुम चैन न पाओगे। मैंने ये सत्तर रुपये भी छोड़े, अदालत भी न जाऊंगा, जाओं। अगर मैं ब्राह्मण हूँ तो अपने पूरे दो सौ रुपये लेकर दिखा दूँगा। और तुम मेरे द्वार पर आओगे और हाथ बांधकर दोगे।''[7]

अछूतपन को दूर करने के लिए गाँधी जी कांग्रेस के साथ मिलकर जो कार्य कर रहे थे, वही कार्य प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' में सेवक दल कर रहा था। सभी जातियों के लोग सेवक धर्म को निभा रहे थे। उच्च-कुलीन वर्ग के पात्र सोफिया, इन्दु, प्रभु सेवक, विनय आदि चमार सूरदास का साथ देते हैं। गोली लग जाने पर सोफिया उसकी सेवा में कोई कसर नहीं छोड़ती।

सवर्ण लोग, दलित जातियों की गरीब, अनपढ़, पेट-भर अनाज के लिए मुहताज स्त्रियों को थोड़े टुकड़ों का प्रलोभन देकर, अपनी काम वासना का हमेशा से शिकार बनाते रहे हैं। जिन्हें वे शास्त्रों के आदेश से अछूत मानते हैं, उन्हीं की स्त्रियों का शायद शास्त्रों की इजाज़त से आलिंगन-चुम्बन और न जाने क्या-क्या करते हैं। ऐसी अवस्था में अछूतपन को पकड़े रहना कितना बेमानी है। महात्मा गाँधी के प्रचार-कार्य से अछूत समझे जाने वाली जाति में चेतना जागृत हो चुकी थी। तभी तो सीलिया चमारिन का बापू हरखू मातादीन के दुष्कृत्य एवं कमीनेपन से जल-भुनकर गाँव के लोगों के सामने दातादीन को कहता है- ''इस तरह गाँव की मरजाद बिगड़ने लगी तो किसी की आबरू न बचेगी। मातादीन ने सीलिया की इज्ज़त बिगाड़ी है। हम या तो उसे चमार बनाकर छोड़ेंगे या फिर तुम सिलिया को ब्राह्मण बनाओ, उसके हाथ का छुआ खाओ-पिओ, उसके साथ उठो-बैठो।''[8]

जाति-पाँति की कुप्रथा, जन्म के साथ ही हमारे दिलों-दिमाग में ऊँच-नीच तथा छुआछूत का जहर भर देती है। समाज में विषमता का जहर फैलाने वाली इस कुप्रथा को जैसा प्रेमचन्द कहते हैं जल्द से जल्द जड़-मूल से उखाड़कर फैंक देने में ही देश की भलाई है। झूठे बन्धन वैर और कटुता उत्पन्न करते हैं। अतः जन-जागृति उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए।

गोबर के द्वारा अहीरिन झुनिया से सम्बन्ध बनाकर घर लाने पर समाज के ठेकेदार होरी पर डांड लगा देते हैं। जबकि स्वयं इन ठेकेदारों के निम्न वर्ग की औरतों के साथ अवैध सम्बन्ध है। प्रेमचन्द ने गोदान में स्पष्ट किया है कि जन्म से न कोई ब्राह्मण है, न शूद्र है, जन्म से सभी समान है। ऊँच-नीच

या छोटे-बड़े का भेद गुण-कर्म से उत्पन्न होता है। श्रेष्ठता की निशानी आचार शुद्धता और चरित्र में है।

(2)

प्रेमचन्द मानवतावादी थे। वे धर्म के नाम पर हिन्दू और मुसलमानों के बीच में होने वाले दंगों के विरोधी थे। इसलिए वे गाँधी जी के हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त को अपनाते हैं तथा आर्य-समाज से प्रभावित होते हुए भी उसके 'शुद्धि आन्दोलन' के कार्यक्रम को न अपना सके। उनकी दृष्टि में-साम्प्रदायिकता एक पाप है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों को सहोदर मानते है। ''चाहे कोई भी हो। मरते हैं तो तुम्हारे ही भाई बन्द न। तुम्हीं में से निकलकर वे मुसलमान हुए हैं और यह सब तुम्हारी मूर्खता का तावान है। फिर मैं तो कहता हूँ गाय के पीछे आदमी का कुर्बान होना अच्छा है और वह गाय तो तुम्हारी और मुसलमान दोनों की है। वे भी इसी जगह पैदा होते हैं और मरते हैं। जिस-जिस चीज़ से उनका हानि लाभ होगा, उसी से तुम्हारा भी होगा। अगर तुम ठंडे दिल से समझा दो तो दूसरी बात है। अगर तुमसे समझाने से न बने तो उसे छोड़ दो।''[9]

हिन्दू हो या मुसलमान हो, दोनों ही एक राष्ट्र के पुत्र हैं, दोनों के हित अहित, कर्त्तव्य, उन्नति, अवनति एक ही हैं। 'रंगभूमि' में 'विनय' की जान बचाने के लिए मुसलमान सेवक अपनी जान दे देता है। तब रानी जाह्नवी स्पष्ट कहती है कि- ''क्या कहा? मुसलमान है ! कर्त्तव्य के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं, दोनों एक ही नाव में बैठे हैं, डूबेगें तो दोनों डूबेगें, बचेगें तो दोनों बचेगें।''[10]

साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के प्रसार का मूल कारण है- स्वार्थ की प्रवृत्ति : चाहे वह व्यक्ति का स्वार्थ हो अथवा किसी संस्था अथवा गुट का। जाति और धर्म की दुहाई देकर मानव-मानव के बीच भेदभाव की दीवार खड़ी करना घृणास्पद है। 'रंगभूमि' में धर्म की विशेषता को बताते हुए ईसाई कन्या सोफिया कहती है कि- ''मैंने देखें हैं हिन्दू-घरानों में भिन्न-भिन्न मतों के प्राणी कितने प्रेम से रहते हैं। बाप सनातन-धर्मावलम्बी है, तो बेटा आर्य समाजी। पति ब्रह्म समाज में है, तो स्त्री पाषाण पूजकों में। सब अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं। कोई किसी से नहीं बोलता। हमारे यहाँ आत्मा कुचली जाती है। फिर भी यह दावा है कि हमारी शिक्षा और सभ्यता विचार स्वातंय के पोषक है।''[11]

सोफिया एनिबेसेंट की भांति विश्वधर्म में विश्वास रखती है। इसलिए वह एक तरफ अपनी कट्टर ईसायिन माता का विरोध करती है वहीं दूसरी तरफ ईसा मसीह तथा हिन्दू धर्म की अच्छाइयों की सराहना भी करती है और उनकी अच्छाइयों को ग्रहण करने का भी प्रयास करती है। इन्हीं गुणों को अपनाने के कारण उसमें सेवा, त्याग, दया के भाव हैं। यद्यपि एक बार परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह वीरपाल के साथ रहने लगती है और क्रांतिकारी दल की सदस्या बन जाती हैं, किन्तु अवसर पाते ही वह उस दल को छोड़ देती है। सोफिया किसी धार्मिक सम्प्रदाय विशेष में बंधकर नहीं चलती। वह तो धर्म के मूल तत्त्व सत्य, अहिंसा, प्रेम, सेवा और त्याग को ग्रहण कर अपने मार्ग पर अग्रसर होती है। इसके लिए उसे किसी भी धर्म या संप्रदाय में उपयोगी तत्त्व दिखाई पड़ते हैं उसे वह ग्रहण कर लेती है। 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने लिखा है कि- ''धर्म और ज्ञान दोनों एक हैं और इस दृष्टि से संसार में केवल एक धर्म है, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, यहूदी ये धर्म नहीं है। भिन्न-भिन्न स्वार्थों के दल है, जिनसे हानि के सिवा आज तक किसी को लाभ नहीं हुआ।''[12]

प्रेमचन्द ने लोगों को संकीर्णता के दायरे से निकालकर धर्म के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा दी है। जब तक हम अन्य धर्मावलम्बियों के साथ उतना ही प्रेम नहीं करेगें जितना निज धर्मवालों के साथ करते हैं तब तक हम पंथजनित संकीर्णता से मुक्त न हो पाएंगे।

(3)

व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। यदि व्यक्ति या समाज समूह का एक अंग है तो व्यक्तियों के समूह से ही समाज बनता है। एक के अभाव में दूसरे के अस्तित्व की संभावना ही नहीं है। अकेला व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता प्रेमचन्द इस बात को नहीं मानते। गौतम बुद्ध, प्लेटो अपनी तरह के अकेले व्यक्ति थे। समाज व्यक्ति से ही बनता है। समाज-सुधार, समाज कल्याण या लोकमंगल की भावना ही उनका लक्ष्य था। क्योंकि समाज-सुधार होने से समष्टि रूप से सभी व्यक्तियों का कल्याण भी स्वतः ही हो जाता है। समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को दूर करने के लिए उनके पात्र प्रयत्नशील है। उनके सभी आदर्श पात्र अपने लिए नहीं अपितु समाज के लिए जीते हैं। गरीब किसानों, दलितों एवं मजदूरों की पीड़ा को देखकर वे आह भरते है।

ग्रामीणों के प्रति आकर्षण और उनके लिए संघर्ष का मुख्य कारण यही है कि वे उन्हें समाज का सर्वाधिक शोषित एवं पीड़ित वर्ग मानते हैं। इस शोषण को दूर करके शोषण हीन समाज की स्थापना के लिए साहित्य के माध्यम से प्रयत्न करना वे अपना धर्म समझते हैं। ग्रामीण समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, अशिक्षा, मद्यसेवन आदि दुर्गुणों का मुख्य कारण शोषण को ही बताया है। शोषण को समाप्त करने के लिए जमींदारी प्रथाा का अंत अति आवश्यक है। जमींदारों

द्वारा अपने स्वत्व का त्याग करने की कल्पना गाँधीवादी विचार-धारा का अंग है या फिर किसानों का संगठित होकर शिक्षा प्राप्त करके इस कुप्रथा का विरोध करना।

प्रेमचन्द मानव जीवन को अत्यन्त कोमल मानते हैं- ''जीवन सूत्र कितना कोमल है। वह क्या पुष्प से कोमल नहीं, जो वायु के झोंके सहता है और मुरझाता नहीं? क्या वह लताओं से कोमल नहीं, जो कठोर वृक्षों के झोंके सहती और लिपटी रहती है? क्या पानी के बबूलों से कोमल नहीं, जो जल की तरंगों पर तैरते हैं और टूटते नहीं? संसार में और कौन सी वस्तु इतनी कोमल, इतना अस्थिर, सारहीन है, जिससे एक व्यंग्य, एक कठोर शब्द, एक अन्योक्ति भी दारुण, असह्य घातक है! और इस भित्ति पर कितने विशाल कितने भव्य, कितने वृहदाकार भवनों का निर्माण किया जाता है।''[13]

भोग-विलास और वासना-प्रेम मानव जीवन की उन्नति के मार्ग में सबसे बड़े बाधक है। यह माया है जो हमें मोह में फंसाकर हमारा जीवन नष्ट कर देती है। हमारा उद्धार इनसे नहीं बल्कि अपने सुकर्म से हो सकता है और यह सुकर्म है, सेवा और त्याग के मार्ग को अपनाकर जनहित के लिए कार्य करना। प्रेमचन्द इस सेवा मार्ग के द्वारा ही मनुष्य की मुक्ति की कल्पना करते हैं। यदि इसमें लेशमात्र भी स्वार्थ का समावेश हो गया तो वह समूचा का समूचा कार्य निरर्थक हो जाता है। समाज सेवा के साथ-साथ परिवार सेवा को भी महत्त्व दिया है। क्योंकि जो व्यक्ति अपने परिवार की सेवा नहीं कर सकता वह अपनी जाति की सेवा भी नहीं कर सकता। 'गोदान' में प्रो. मेहता के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है- मेहता का जीवन अब तक स्वाध्याय और चिन्तन में गुज़रा था और सब कुछ कर चुकने के बाद और आत्मवाद तथा अनात्मवाद की खूब छानबीन कर लेने पर वह इसी तत्त्व पर पहुँच जाते थे कि प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच में जो सेवा-मार्ग है चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वहीं जीवन को ऊँचा और पवित्र बना सकता है.....ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य उनकी समझ में आता था और वह था मानव जाति की एकता।''[14] किन्तु यह सेवा मार्ग सरल नहीं है, अपितु अत्यन्त कठिन मार्ग है। त्याग एवं निस्वार्थ भाव को अपनाकर ही सेवा हो सकती है। त्याग परहित या लोकहित की भावना से प्रेरित होना चाहिए। निस्वार्थ त्याग और सेवा को मर्मयोग की संज्ञा दी गई है। कर्म जीवन का परम लक्ष्य है। किन्तु वही कर्म श्रेष्ठ है जो निष्काम भाव से समाज कल्याण एवं जनहित कल्याण के लिए किया जाता है। 'रंगभूमि' में सूरदास कहता है कि - ''हम तो खाली मैदान में खेलने के लिए बनाए गए हैं। सभी खिलाड़ी मन लगाकर खेलते हैं। सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो लेकिन जीत एक ही की होती है तो क्या इससे हारने वाले हिम्मत हार जाते हैं। वे फिर खेलते हैं, फिर हार जाते हैं, तो फिर खेलते हैं। कभी न कभी तो उनकी जीत होती ही है। जो आपको आज बुरा समझ रहे हैं। वे कल आपके सामने सिर झुकाएंगें। हाँ, नीयत ठीक रहनी चाहिए।''[15]

जीवन लक्ष्य पर पहुँचने के लिए मनुष्य का स्वावलंबी होना अति आवश्यक है। दिखावटी जीवन जीने के लिए हमें अत्यधिक छल-प्रपंच करने पड़ते हैं। धन खर्च करना पड़ता है। व्यक्ति को स्वयं के कमाये धन पर ही अधिकार जमाना चाहिए अन्य के धन पर नहीं।

'हृदय-परिवर्तन' के अमोघ शस्त्र को प्रेमचन्द ने समाज की सभी समस्याओं का हल बताया है। वर्ग भेद को समाप्त कर वर्ग समन्वय की स्थापना से लेकर मद्य-निषेध तक के लिए वे पूर्ण आस्था एवं निष्ठा के साथ इस गाँधीवादी सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। 'गोदान' में वर्ग चेतना उभर कर सामने आई है। 'रंगभूमि' में औद्योगिकरण की बात उठाकर विरोध का भाव व्यक्त किया है। समाज में 'एकता' एवं संगठन होना अति आवश्यक है। संगठन के सामने बड़ी से बड़ी शक्ति को झुकना पड़ता है। 'गोदान' के किसान पात्र 'रामसेवक' के प्रयास से उसके गाँव के सभी किसानों के बार संगठित हो जाने पर जमींदार को झुकना पड़ता है और संगठित किसानों की विजय होती है। रामसेवक, दातादीन से कहता है - ''कभी जमींदार ने गाँव पर हल पीछे दो-दो रुपये चन्दा लगाया। किसी बड़े अफसर की दावत दी थी। किसानों ने देने से इंकार कर दिया। बस उसने सारे गाँव पर जाफा कर दिया। हाकिम भी जमींदार ही का पक्ष लेते हैं। यह नहीं सोचते कि किसान भी आदमी है, उनके भी बाल-बच्चे हैं, उनकी भी इज्ज़त आबरू है और यह सब हमारे दब्बूपन का फल है। मैंने गाँव भर में डोंडी पिटवा दी की कोई बेसी लगान न दे और न खेत छोड़े हमको कोई कायल कर दे, तो हम जाफा देने को तैयार हैं, लेकिन जो तुम चाहो कि बेमुँह के किसानों को पीसकर पी जायें, तो यह न होगा। गाँव वालों ने मेरी बात मान ली और सबने जाफा देने से इंकार कर दिया। जमींदार ने देखा सारा गाँव एक हो गया है, तो लाचार हो गया। खेत बेदखल कर दे, तो जोते कौन?''[16]

गाँधीवादी जीवन दर्शन के अनुसार औद्योगिक व्यवस्था ने भारतीय संस्कृति की रीढ़ पुरानी ग्रामीण सभ्यता को नष्ट कर दिया है और उसके स्थान पर एक नई भौतिकवादी सभ्यता आ रही है। इस सभ्यता का विरोध करते हुए प्रेमचन्द गाँधीवादी नारे 'Go to the Village' का समर्थन करते हुए वकालत करते हैं। 'रंगभूमि' में 'जगधर' के माध्यम से प्रेमचन्द ने कहा है - ''दिहात-दिहात ही है, सहर, सहर ही! सहर में पानी तक तो

अच्छा नहीं मिलता। वही बम्बे का पानी पियो, धरम जाए और कुछ स्वाद भी न मिले।''[17]

समाज में व्याप्त रूढ़ि, मद्यपान, नैतिक पतन, पंचायतों के गिरते स्तर, पर प्रेमचन्द ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। गाँवों से दूर कारखाने होने चाहिए तभी सीधे-सीधे ग्रामीण अपनी संस्कृति को बचा पाएंगे। समाज में व्याप्त रिश्वतखोरी, धार्मिक पाखण्ड, जातिगत भेदभाव, शराब इत्यादि दुर्व्यसनों की प्रेमचन्द ने आलोचना की है।

(4)

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में परम्परागत सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास के कारण भारतीय समाज पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। समाज में रूढ़िवादिता, मिथ्याडम्बर और अंधविश्वासों की प्रवृत्तियाँ पनप रही थी। नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। दहेजप्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह अनमेल विवाह आदि कुप्रथाओं का प्रचलन बढ़ रहा था। गाँधी जी ने भारतीय नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की। प्रेमचन्द सुधारवादी साहित्यकार थे। अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने समाज-सुधार आन्दोलन को बल प्रदान किया और समाज को खोखला करने वाली कुप्रथाओं के विरूद्ध अभियान छेड़ा। नारी समस्याओं के समाधान की खोज की दिशा में प्रेमचन्द की व्यग्रता उनकी कृतियों में लक्षित होती है।

प्रत्येक देश और जाति के लोग अपने-अपने आचार विचार और सांस्कृतिक परम्पराओं के आधार पर विवाह के सम्बन्ध में सोचते हैं। सामाजिक संगठन में विवाह को महत्त्वपूर्ण माना गया है। कभी-कभी वैवाहिक असंगतियाँ समाज में अनेक कुरीतियों को जन्म और उनको पनपने का अवसर देती है, सामाजिक दृष्टि से स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों में असंगति नहीं होनी चाहिए। यही असंगति अनमेल विवाह कहलाती है। मुंशी प्रेमचन्द भारतीय समाज के स्वरूप को आदर रूप में देखना चाहते थे ऐसी स्थिति में वैवाहिक समस्या की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था।

नारी का सम्मान उसके गुणों के कारण किया जाता है। नारी गुणों में पुरुष से श्रेष्ठ है ऐसा प्रेमचन्द मानते हैं। स्नेह में, त्याग में, संयम में वह पुरुष से श्रेष्ठ है। इन्हीं गुणों से सौन्दर्य होता है और इन्हीं गुणों से कोई पूज्य बनता है। परन्तु वह शारीरिक तौर पर दुर्बल है और आर्थिक तौर पर पराधीन है। शारीरिक तौर पर निर्बलता उसके सम्मान में सबसे बड़ी अड़चन है। गुणों से अपनी रक्षा करना वह कठिन मानती है। सतीत्व की रक्षा के लिए गाँधी जी हिंसा प्रयोग न्यायोचित मानते है। इस समस्या को प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' में उठाया है- सूरदास के गाँव के दो लड़के विद्याधर और घीसू एक दिन सूरदास की झोंपड़ी में भैरों की प्रौढ़ा पत्नी सुभागी से बलात्कार करने की नीयत से घुसते हैं, किन्तु रंगे हाथ पकड़े जाने पर गाँव वालों की धमकियों की चिन्ता न करते हुए सूरदास उन्हें पुलिस के हवाले कर देता है। क्योंकि उसकी दृष्टि में सतीत्व की कीमत अमूल्य है और उसकी रक्षा होनी चाहिए, वह चाहे गरीब की आबरू हो या अमीर की। वह कहता है - ''क्या औरत की आबरू होती ही नहीं ? सुभागी गरीब है, अबला है, मजदूरी करके अपना पेट पालती है, इसलिए तो चाहे उसकी आबरू बिगाड़ दे ? जो चाहे उसे हरजाई समझ ले ?''[18] सारा गाँव सूरदास के इस कार्य के विरूद्ध हो जाता है और जब दरोगा जी गाँव में पूछताछ के लिए आता है तो कोई भी व्यक्ति साक्षी देने को तैयार नहीं होता। तब सूरदास सत्य, न्याय और नारी जाति की इज्ज़त की दुहाई देता हुआ आगे बढ़कर कहता है - ''अगर यही हाल रहा तो समझ लो किसी की आबरू न बचेगी। भगवान ने सभी को बहू-बेटियाँ दी हैं, कुछ उनका खयाल करो। औरत की आबरू कोई हंसी खेल नहीं है।''[19] प्रेमचन्द ने वेश्यावृत्ति के मूल कारणों पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। मिर्जा खुर्शीद की जवानी वेश्यावृति के मूल कारण का निर्देश करते हुए प्रेमचन्द ठीक ही कहते हैं - ''रूप के बाज़ार में वहीं स्त्रियाँ आती है, जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मानपूर्वक आश्रय नहीं मिलता, या जो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती है और अगर ये दोनों प्रश्न हल कर दिये जायें तो बहुत कम औरतें इस भाँति पतित हो।''[20]

दहेज की कुप्रथा भी स्त्री को समाज में हीन बनाती है, कमजोर बनाती है। सभी माता-पिता कन्या के विवाह के समय अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार उसे कपड़े, गहने, बर्तन, रुपये-पैसे आदि घर-गृहस्थी का बहुत-सा सामान देते ही हैं। स्वेच्छापूर्वक बेटी को दी गई वस्तुएँ भेंट कहलाती है, किन्तु जब वर पक्ष कन्या के माता-पिता की आर्थिक स्थिति का ध्यान न रखकर मुँहमाँगी रकम लेने की माँग करते हैं तो वह दहेज की कुप्रथा का रूप धारण कर लेती है।

दहेज प्रथा वैवाहिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या रही है। अनमेल विवाह, बहू-पत्नी प्रथा आदि की समस्या का दहेज-प्रथा से सीधा संबंध रहा है। 'गोदान' में अपने पुत्र के लिए दहेज-माँग करने वाला दातादीन, झिंगुरीसिंह के सामने अपनी दलील पेश करते हुए कहता है कि - ''किसी ने सेंत-मेंत में मेरी लड़की ब्याह ली होती तो मैं भी सेंत में लड़का ब्याह लेता।''[21]

दहेज की इस कुप्रथा को सामाजिक विकृति तो प्रेमचन्द मानते ही थे, लेकिन उसके आर्थिक पहलू को भी उन्होंने सदा

अपने ध्यान में रखा था। 'गोदान' का होरी भी एक ऐसा बाप है जो अपनी बेटियों के विवाह में दहेज की रकम दे सकने में सर्वथा असमर्थ है। उसकी बड़ी लड़की सोना, पिता की आर्थिक दयनीयता का अनुभव कर वर-पक्ष के पास दो टूक जवाब भेजती है कि उसे विवाह में सोना के घर से दहेज की कोई रकम नहीं मिल सकती। यदि बिना दहेज के रिश्ता करना कबूल हो तो ठीक, नहीं तो सोना आत्मघात कर लेगी। किसी भी स्थिति में वह अपने गरीब बाप का बोझ बढ़ाने के लिए तैयार नहीं होगी।''[22] सोना के प्रमाण से यह विदित है कि नारी समाज दहेज के विरूद्ध किस रूप में जाग गया है। होरी को अपनी दूसरी बेटी रूपा का विवाह इसी दहेज की कुप्रथा के कारण एक ऐसे व्यक्ति के साथ करना पड़ता है जो रूपा के योग्य नहीं है।[23]

प्रेमचन्द ने जिस समय अपना साहित्यिक कार्य आरम्भ किया, उस समय हिन्दी साहित्य में परम्परागत रूढ़ियों, मुर्दा रीति-रिवाजों और सामाजिक संस्कारों के प्रति विरोध का मुक्त और सुखद वातावरण में साँस लेने की आकांक्षा का तथा व्यक्तिगत सम्मान और आज की अंधकारपूर्ण अवस्था से मुक्त होकर एक नये समाज के लिए कटिबद्ध होने की अडिग आकांक्षा उभर कर सामने आ रही थी। समाज के शरीर पर फैले हुए विषमता के भीषण विष को दूर करने तथा समता के महान् आदर्श को सिद्ध करने के पवित्र लक्ष्य की पूर्ति में जो योगदान दिया है वह अतुल है असीम है। प्रेमचन्द ने महात्मा गाँधी की भाँति दलित जातियों के उद्धार, मादक द्रव्यों का निषेध, अस्पृश्यता-निवारण, स्त्रियों की उन्नति, आर्थिक समानता, आदि सामाजिक विषयों को साहित्य के माध्यम से उठाया! उन्होंने माना कि स्त्री भी समाज का अंग है। वे नारी को पुरुषों के समान मानने के हिमायती हैं। अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं है बल्कि उसमें घुसी हुई सडाँध है। समाज-सुधार का कार्यक्रम स्वतंत्रता आंदोलन का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। 'रंगभूमि' और 'गोदान' में सामाजिक सुधारों अथवा राष्ट्रीय जागृति का सच्चा इतिहास मिलता है।

संदर्भ-

1. जितेन्द्र श्रीवास्तव, भारतीय समाज, राष्ट्रवाद और प्रेमचन्द, पृ. 9
2. वही, पृ. 213
3. महात्मा गाँधी, स्त्रोत- वही, शीर्षक 'हमारा कर्त्तव्य'
4. प्रेमचंद, गोदान, पृ. 194
5. वही
6. वही, पृ. 269
7. वही, पृ. 170
8. वही, पृ. 193
9. शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर में, पृ. 114-115
10. रंगभूमि, पृ. 370
11. वही, पृ. 21
12. वही, पृ. 276
13. वही, पृ. 368
14. गोदान, पृ. 236
15. रंगभूमि, पृ. 373
16. गोदान, पृ. 272
17. वही, पृ. 380
18. वही, पृ. 326
19. वही, पृ. 327
20. गोदान, पृ. 100
21. वही, पृ. 192
22. वही, पृ. 200
23. वही, पृ. 276

मकान नं. 39/ टाईप 4, म.द.वि. कैम्पस, रोहतक

11- f'ko'kVV xkfon xMlik	n'k foHkktu d ifji{; e vk/kk xko	150
12- Mk- dj] Mk- f'kn	vkfnokLh lkfgR; fofo/k vk;ke	550
13- Mk- geyrk dkpudj	efgyk miU;kl dkjkd miU;kl ke i#"k pfj=k	395
14- Mk- leu flg	ledkyhu dfork enfyr pruk	350
15- Mk- ljkt ixkj	fgnh nfyr lkfgR; vknkyu	375
16- Mk- ckcjko nlkb	nfyr lkfgR; 'kkL=k fo/kk vkj bfrgkl	500
17- l; ukjk;.k j.kHk	dgkuhdkj dey'oj lnHk vkj idfr ---	300
18- ik- fnyhi Qkyku	rel miU;kl e n'k foHkktu dh =kk lnh	175
19- Mk- ckck lkgc jly 'k[k	efLye lekt vkj vCny fcfLeYykg d miU;kl	350
20- Mk- lkui 'kke	eerk dkfy;k d dFkk lkfgR; e ukjh pruk	400

वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़

205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002, मो. 09044918670

शेष पृ. 52 पर.....

शोध आलेख

उपेन्द्रनाथ अश्क : एक बहुरंगी व्यक्तित्व

विकेश कुमार मिश्र

साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य साधना में निहित होता है क्योंकि जीवन और साहित्य में बहुत ही घनिष्ट संबंध होता है। अश्क जी का व्यक्तित्व बहुत ही नाटकीय और विवादास्पद रहा है तथा जीवन संघर्षों का जीवित इतिहास है। इसलिए उनके साहित्य में समाज की वास्तविकता अनेक सन्दर्भों में मूर्त्त हुई है। इनके व्यक्तित्व के बारे में श्री भैरव प्रसाद गुप्त का कथन है-''अश्क का व्यक्तित्व अपने परिचितों तथा मित्रों के लिए इसी कारण एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसे सुलझाने का दम शायद ही कोई भर सकता है। अश्क जैसा लोकप्रिय, साथ ही विवादग्रस्त व्यक्तित्व आज हमारे लेखकों में दूसरा नहीं है।''[1] कृष्ण देव वैद के मन्तव्य में, अश्क का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं से कहीं अधिक गौरवान्वित एवं वैपरीत्य वाला है। अपने संघर्षमय जीवन की कटु से कटु स्थितियों से उन्हें दो चार होना पड़ा। जीवन में एकाकीपन के भार से मुक्त होने के लिए इनका हृदय कराह उठा-

मैं उकता जाता हूँ, निज एकाकी सूनेपन से,
उकता जाता हूँ अपने इस भार सरीखे जीवन से।[2]

उपेन्द्रनाथ अश्क के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में शिवपूजन जी कहते हैं- ''अश्क का जीवन संघर्षों का पुंज है जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। घरेलू वातावरण दुबले-पतले शरीर और प्रभाव प्रवण मन से संघर्षों से जूझने की उन्हें प्रेरणा दी, क्योंकि दुःखी मन, भावों के व्यतीकरण द्वारा सन्तोष पाता है। अपने दिल के घावों को छिपाने के लिए इन्होंने फक्कड़पने और विनोद की तिलस्मी चादर ओढ़ी इससे पहले कि संसार इनके स्वाभिमान को कुचलता इन्होंने दुनिया को ठोकर लगाई। समाज की जर्जर गिरती दीवारों से निकल बुद्धि और विवेक एवं मानवता की नीवों पर अपनी खुशी का घरौंदा बनाने के लिए कितनी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी यह सब उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से झलकता है।''[3] विवादग्रस्त होने पर भी अश्क की कीर्ति बढ़ती गई। श्री उदयन वर्मा के अनुसार, ''अश्क को कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि साहित्य की सभी विधाओं के सृजन में समान रूप से सिद्धि प्राप्त है।

आज किसी को भी यह मानने से इन्कार नहीं है कि हिन्दी साहित्य में उनका योगदान काफी महत्त्वपूर्ण है। उनके यश की सुगंध देश और पूरे हिन्दी साहित्य की भाषाओं की सीमा को पार कर चुकी है और उनके पाठकों तथा प्रशंसकों की संख्या भारत में ही नहीं, रूस, अमेरिका, जापान और इंग्लैण्ड आदि में भी बढ़ती जा रही है। लिखना उनके लिए एक व्यसन बन चुका है। लेखन के लिए उनका जीवन पूर्णतः समर्पित है।''[4]

साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होता है वह समाज की बात समाज से लेकर समाज को उस बादल की तरह देता है जो खारे जल को समुद्र से ग्रहण कर अमृतमयी कणों से परिवर्तित कर धरती को लौटा देता है। जगदीश चन्द्र माथुर के कथन के अनुसार- ''अश्क सागर में पड़ें मोती या आकाश में खिलने वाले फूल की तरफ हाथ नहीं बढ़ाते। इन्होंने ने जो अनुभव किया वही लिखा।''[5]

अतएव इनके विषय दूर की कौड़ न होकर हमारे आस-पास के दैनिक जीवन से ग्रहण किये हुए प्रतीत होते हैं। अश्क का उद्देश्य जीवन सागर के उस जल का चित्रण करना है जो रुका हुआ है और सड़ रहा है, उस यथार्थ को व्यक्त करना है जो घृणास्पद है। इनकी जीवन दृष्टि पहले सृजनात्मक रचनाओं में आदर्शवादी रही है परन्तु अचानक जीवन में एकाएक परिवर्तन आने से उनकी जीवन दृष्टि भी आदर्श से यथार्थ की ओर अग्रसर हुई। अश्क की जीवन दृष्टि यथार्थवादी है। इन्होंने यथार्थ का वर्णन सामाजिकता के आधार पर ही किया।

डॉ. इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में-''अश्क निम्न-मध्य वर्गीय समाज के बुद्धिजीवी सदस्यों में से हैं जो सामाजिक परिवेश के प्रति विद्रोह करने पर तुल जाते हैं जिसमें उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अवसरों का अभाव है। बचपन तथा यौवन काल की कड़ी अनुभूतियों ने उनकी दृष्टि को निर्मित किया।''[6]

उपेन्द्रनाथ अश्क का व्यक्तित्व आज जो हमारे सामने दिखाई देता है उसमें उनकी तीसरी पत्नी कौशल्या का कितना हाथ है यह किसी से भी नहीं छिपा। उन दिनों जब अश्क की

साहित्यिक नैया मझधार में पड़ी हुई थी जीवन में न रस था, न मादकता, ऐसे समय में श्रीमती कौशल्या अश्क ने अपने सबल हाथों से अश्क के कोमल क्लेवर को लपेट लिया, इसका परिणाम यह हुआ कि कौशल्या का सबल पाकर अश्क की जीवन रागिनी अनेक धाराओं में बहने लगी। अश्क अपनी आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक स्थिति में जिस दर्जे पर पहुँचे हैं उनमें कौशल्या के अथक परिश्रम और प्रयत्नों का बड़ा हाथ है।

अश्क का साहित्यिक व्यक्त्वि एक ईमानदार साहित्यकार का है जो हमेशा अपने अथक परिश्रम द्वारा हिन्दी साहित्य जगत को एक नई सोच तथा नई दिशा दी है। एक सफल लेखक के बारे में अश्क का अभिमत है-''लेखक से साधक के गुणों की अपेक्षा है। उसे योगी-सा होना चाहिए। जो अपनी साधना में रत हो, सिद्धि ही उनका ध्येय हो और बाहर निन्दा-स्तुति जिस पर कोई प्रभाव न डाले।''[7]

अश्क का जीवन बड़ा संघर्षमय तथा दिलचस्प रहा है। जीवन के कटु अनुभवों का उन्हें सामना करना पड़ा श्री भैरव प्रसाद गुप्त के अनुसार -''जीवनभर उन्होंने संघर्ष किया है, हर मोड़ को समझकर उन्होंने सही रास्ता पकड़ा है, कितने ही भटकावों से लड़कर अपने लेखक की रक्षा की है और स्वयं ही हाथ पाँव मारकर उन्होंने तैरना सीखा है। उन्हें गर्व है कि उन्होंने लेखक बनना चाहा और वे अपने अथक परिश्रम से बन गए।''[8]

अन्त में पर्याप्त अनुसंधान के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि उपेन्द्रनाथ अश्क का व्यक्तित्व बहुरंगी प्रतिभा सम्पन्न तथा एक संघर्षरत व्यक्ति का व्यक्तित्व है जो हमेशा प्रगति करते हुए दिखाई दिए।

सन्दर्भ-

1. भैरव प्रसाद गुप्त, अश्क : एक व्यक्तित्व, (सं.) कौशल्या अश्क, पृ. 72
2. उपेन्द्रनाथ अश्क, बरगद की बेटी, पृ. 34
3. शिवपूजन सहाय, अश्क : एक रंगीन व्यक्तित्व (सं.) कौशल्या अश्क, पृ. 1
4. उदयन वर्मा, अश्क : एक रंगीन व्यक्तित्व, (सं.) कौशल्या अश्क, पृ. 72
5. जगदीश्चन्द्र माथुर, नाटककार अश्क, पृ. 20
6. इन्द्रनाथ मदान, उपन्यासकार अश्क, पृ. 10
7. अश्क : सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 44
8. अश्क : एक व्यक्तित्व, (सं.) कौशल्या अश्क, पृ. 72

शोध छात्र-हिन्दी विभाग, बुद्धा पी. जी. कॉलेज, कुशीनगर

पृ. 50 का शेष भाग.....

21- Mk- ek/kjh lkuDd	efgyk miU;kldkjk dh jpukvk e pruk d iokg	375
22- Mk- 'kkHkk ;'kor	e=k;h i"ik d dFkk lkfgR; e ukjh thou	270
23- Mk- ccujko ckMd	chloh 'krkCnh d vfre n'kd dh dgkfu;k e ukjh	500
24- Mk- jek uoy	enyk xx d dFkk lkfgR; e ukjh	550
25- Mk- o'kkyh n'kikM	L=khokn vkj efgyk miU;kldkj	300
26- Mk- exy dlihdj	lkBkÙkjh fgnh yf[kdkvk dh dgkfu;k e ukjh	300
27- Mk- nhik gkoxkjkt	lkBkÙkjh fgnh dgkfu;k e i#"k pfj=k	250
28- Mk- ';kjkt flg cpu	fpUru dh ijEijk vkj nfyr lkfgR;	495
29- Mk- tkfxn dekj	nfyr pruk d lUnHk e dFkkdkj vkeidk'k	495
30- ';kjkt flg@jtrjkuh	nfyr n[ky	300
31- Mk- yfyrk dk'ky	fgUnh nfyr lkfgR; vkj fpUru	195
32- nÙkk=k; e:idj	fitj dh ifjf/k l ckgj dk vkRedFkk	195
33- Mk- lkrkIrk 'kkejko	f'kokuh dy?kmiU;kIke ifrfcfcr lekt	200
34- Mk- Bkdj fot; flg	vK; d ifrfuf/k dgkfu;k e ukjh	200
35- Mk- j?kukFk x.kifr	fgUnh ejkBh efgyk ukV; y[ku e ukjh	300
36- Mk- ,u- flg	nfyr lkfgR; ijEijk vkj foU;kl	495
37- Mk- ljkt ixkj	fgUnh nfyr lkfgR; vkUnkyu	375
38- Mk- lkui 'kke	eerk dkfy;k d dFkk lkfgR; e ukjh pruk	400
39- Mk- j[kk ey	dFkkdkj pUndkrk	350
40- Mk- exy	lkBkÙkjh fgUnh yf[kdkvk dh dgkfu;k ukjh	300

वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़

शेष पृ. 68 पर....

शोध आलेख

आधुनिक युग के शैक्षिक क्षेत्र में भारतीय नारी के आदर्श

एन. मोहना*
डॉ. शशि प्रभा जैन**

नारी शील, राष्ट्रीय रक्षा तथा कर्त्तव्य की खान है। जहाँ स्त्रियों को उचित स्थान दिया जाता है तथा उनकी शिक्षा का भी उचित प्रबंध किया जाता है, वही देश उन्नति कर सकते हैं। राष्ट्र में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, उन्हें सम्मानित जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाने का साधन शिक्षा ही है जिससे वह समाज में आदर्श प्राप्त कर सकती हैं। शिक्षा के द्वारा नारी अपने आपको भावी जीवन के लिए सम्बद्ध करता है तो दूसरी ओर शिक्षा के माध्यम से वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की प्रतिस्थापना की जाती है।

शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा पद की निष्पत्ति शिक्ष् धातु से होती है। इसका अर्थ यह है कि विद्या को प्राप्त करना। प्राचीन आचार्यों ने शिक्षा के अन्तर्गत चरित्र निर्माण को बहुत अधिक महत्त्व दिया था। संस्कृत में सूक्ति है- ''विद्या ददाति विनियम्''। इसका अभिप्राय है कि शिक्षा को प्राप्त करके विद्यार्थी का चरित्र शुद्ध और पवित्र हो जाना चाहिए।

आदर्श स्त्री

भरण का आरंभिक स्थिति एक सूक्ष्म बिंदु मात्र होती है। माता की चेतना और काया उसमें प्रवेश परिपक्व बनने की स्थिति तक पहुँचाती है। असमर्थ-अविकसित स्थिति में माता ही एक अवलंबन होती हैं, जो स्तनपान करती और पग-पग पर उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। वेदमाता, देवमाता व विश्वमाता के रूप में जिस त्रिपदा की पूजा-अर्चना की जाती है, प्रत्यक्षतः उसे नारी ही कहा जा सकता है। इसलिए स्त्री शिक्षा बहुत आवश्यक है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का कथन है-''पारिवारिक गाड़ी के सुसंचालन में स्त्री-पुरुष दो पहिए के स्वरूप हैं। अतः पारस्परिक समझ पैदा करने और उत्तरदायित्व निभाने की दृष्टि से स्त्री-पुरुष दोनों को शिक्षित होना आवश्यक है। एक पहिया के विपरीत स्थिति में रहने के कारण दाम्पत्य रूपी गाड़ी का सुसंचालन सुविधाजनक और शांतिपूर्ण ढंग से नहीं हो सकेगा।''[1] माता का कलेवर और संस्कार बालक बनकर इस संसार में प्रवेश पाता और प्रगति की दिशा में कदम बढ़ाता है। वह मानुषी दीख पड़ते हुए भी वस्तुतः देवी है। उसके नाम के साथ प्रायः देवी शब्द जुड़ा भी रहता है। श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ उसी का मानना चाहिए। भाव-संवेदना धर्म-धारणा और सेवा-साधना के रूप में उसी की वरिष्ठता को चरितार्थ होते देखा जाता है। उसके रोम-रोम में कृतज्ञता, श्रद्धा और आराधना की भाव उमड़ते रहना चाहिए। इस कामधेनु का जो जितना अनुग्रह प्राप्त कर सकने में सफल हुआ है उसने उसी अनुपात में प्रतिभा, संपदा, समर्थता और प्रगतिशीलता जैसे वरदानों से अपने को लाभान्वित किया है। नारी प्रेम, स्नेह, करुणा एवं मातृत्व की प्रतिमूर्ति है।

विद्या की अवधारणा

विद्या पद की निष्पत्ति विद् धातु से होती है। इसका अर्थ है - ज्ञान प्राप्त करना। अतः विद्या पद के अर्थ हैं ज्ञान, विज्ञान, अध्ययन, शिक्षण, दर्शन, कला, शिक्षा और शास्त्र, साहित्य आदि। मनुष्य की प्रतिभा और बुद्धि विद्या पर ही निर्भर है। मनु ने विद्याध्ययन के संबंध में योग्य उपदेश दिया है- ''जहाँ धर्म और अर्थ न हो, जहाँ सेवा की भावना न हो, वहाँ विद्या का प्रवचन नहीं करना चाहिए। यह ऐसा ही है, जैसा कि ऊसर खेत में उत्तम बीज बोना। ब्रह्मचारी अध्यापक चाहे विद्या के साथ मर जावे और घोर आपत्ति का समय हो, तो भी अयोग्य को विद्या न देवे। विद्या ने ब्राह्मण के पास आकर कहा कि मैं तुम्हारी निधि हूँ। तुम मेरी रक्षा करो। ईर्ष्यालु व्यक्ति को मुझे मत दो। इससे मेरी शक्ति में वृद्धि होगी। जिसको तुम पवित्र समझो, नियम पालन करने वाला ब्रह्मचारी समझो, उसी को मुझे दो। प्रमाद से रहित व्यक्ति ही मेरी रक्षा कर सकता है।''[2] शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के मन को मुक्त करना है, न कि उसे बाँधे हुए चौखटों में बन्द करना है। उसके शारीरिक और बौद्धिक श्रम में सन्तुलन बनाना है ताकि उसका जीवन सर्वांगीण विकास कर सके।''[3] - जवाहरलाल नेहरू

नारी शिक्षा की आवश्यकता

पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर देश के विकास में भारतीय नारी ने बराबर भाग लेती हुए रूढ़िवादी जीवन को तिलांजलि देकर नवयुग का आह्वान किया। शिक्षा के क्षेत्र भी इसमें शामिल है। ब्रह्मचर्य-व्रत से सम्पन्न शिक्षित कन्या को ही गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त था। महिला के शिक्षित होने पर उसके पूरे परिवार को शिक्षा का लाभ मिलता है। शिक्षा, प्रकाश का वह स्त्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शन करती है। शिक्षा को मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा गया है। इससे ही जीवन में सफलता को प्राप्त करता है। ''ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है। उससे मनुष्य सभी तत्त्वों के अर्थों को देखने में समर्थ हो जाता है। उसके सभी विघ्न दूर हो जाते हैं। तीनों लोकों में उसकी सभी प्रवृत्तियाँ सही दिशा में होती है।''[4]

शिक्षा से ही स्त्री के बल, बुद्धि, धैर्य, कार्यदक्षता और चिन्तनशक्ति में वृद्धि होती है। शिक्षा से परिष्कृत, विकसित और परिपक्व बुद्धि ही स्त्री का बल है। शिक्षा स्त्री को इस लोक में तो सफल बनाती ही है, मृत्यु के बाद मोक्ष भी प्राप्त कराती है।

नारी शिक्षा का महत्त्व

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग स्त्री शिक्षा का महत्त्व इस प्रकार बताया है कि स्त्री शिक्षा के बिना लोग शिक्षित नहीं हो सकते। महिलाओं के प्रारंभिक और व्यावसायिक शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करनी चाहिए। स्त्री पृथ्वी की कल्पलता है। महात्मा गाँधी ने भारतीय नारी के आदर्श के विषय में कहा है - ''नारी त्याग की मूर्ति है। जब वह कोई चीज़ शुद्ध व सही भावना से करती है, तब पहाड़ों को भी हिला देती है। मैंने स्त्री को सेवा और त्याग की भावना का अवतार मानकर उसकी पूजा की है।''[5]

शिक्षा के अभाव में महिलाओं की जीवन अनियन्त्रित होकर बिना पतवार की नाव के समान संसार सागर में डोलता रहता है। ''विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान होने पर भी यदि व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि का विकास और आत्म-ज्योति की उपलब्धि नहीं हुई है तो वह व्यक्ति मूर्ख ही है क्योंकि क्रियावान् अर्थात् व्यावहारित ज्ञान से युक्त व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में शिक्षित है।''[6]

स्त्री के लिए शिक्षा प्रकाश का वह स्त्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शन करती है। नारी के लिए शिक्षा प्रमुख साधन है। यदि भावी-जीवन की आधारशिला ही गंभीर तो उस पर जो भवन खड़ा होगा वह स्थायी रहेगा। आज की शिक्षित नारी समय और शिक्षा दोनों के महत्त्व को जानती है। शिक्षा से ही आज प्रत्येक क्षेत्र में नारी की सक्रिय भूमिका देश के निर्माण में लगी है। वर्तमान समय में नारियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी हैं। आज की नारी ने अपनी शक्ति को पहचाना है। आज की साबित किया है। नारी ने अपनी शक्ति को पहचाना है।

आजकल महिलाएँ शिक्षा के माध्यम से अपनी स्थिति को बदलने की पुरजोर कोशिश में लगी हैं। नारी के लिए तो जन्म लेने से मृत्यु तक इसी सफर को तय करना होता है। शिक्षा के क्षेत्र भी इसमें अधूरा नहीं है। उसके लिए हर दिन, हर पल, हर समय, हर साल, हर उम्र के बढ़ते इस दौर में भी परीक्षा की कठिन घड़ी होती है। जिससे मुकाबला करके उसे हर कदम आगे ही आगे चलना होता है और हर परीक्षा को पार करके अपने जीवन की यात्रा को समाज, परिवार में सार्थक बनाना होता है। स्त्री-शिक्षा की वर्तमान स्थिति में पूरा सुधार हुआ है। नारी दुनिया के कोने-कोने में घटित होने वाली घटनाओं का ज्ञान रखती हैं वह अपने जीवन जीने के तरीके में भी आमूल परिवर्तन लाने के लिए उत्सुक हैं। इसके साथ ही उसका सारा ध्यान राष्ट्र के नव-निर्माण की ओर भी लगा है। इस प्रकार समय के परिवर्तन के साथ शिक्षा जैसे सशक्त माध्यम से आज की नारी स्वयं सशक्त बनकर विभिन्न व्यवसायों एवं सेवाओं से जुड़ती जा रही है।

संदर्भ-

1. भारतीय शिक्षा प्रणाली, निशा द्विवेदी, डॉ. गोपाल कृष्ण शेवड़े, पृ. 68
2. काणे, पांडुरंग वामनः धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 250
3. भारतीय महापुराणों के शिक्षाप्रद विचार, डॉ. हरिवंश अनेजा, पृ. 145, अनुरोध प्रकाशन, नई दिल्ली
4. प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति, कृष्ण कुमार, पृ. 4
5. आधुनिक हिन्दी निबन्ध, डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ. 305
6. वैदिक शिक्षा मीमांसा, डॉ. भास्कर मिश्र, पृ. 29

शोधार्थिनी, हिन्दी, अविनाशिलिंगम विश्वविद्यालय, कोयम्बत्तूर, तमिलनाडू

****prof. Avinashilingam university for women***

आलेख

आदिवासी विमर्श

डॉ. तसनीम पटेल

वर्तमान समय में आदिवासी विमर्श नये-नये विचारों के आयाम गढ़ता नज़र आ रहा है। वह कुछ प्रश्नों को समाज के सामने पेश करता है जो वास्तव में समाज के पास उसका जवाब नहीं है। सरकार केवल घोषणाएँ करती है परंतु क्रियान्वयन का दायित्व भूल जाती है। आदिवासी समाज के बच्चे और महिलाएँ आज भी बद से बदतर जीवन जी रहे हैं। आज भी समाज उन्हें हेय और जंगली समझता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 के अंतर्गत राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है कि वह समाज के निम्न वर्गों विशेषतः अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों की शैक्षणिक और आर्थिक हितों में वृद्धि की जाय और उनका निम्नतर जीवन स्तर ऊँचा किया जाए।

एक विश्लेषण के अनुसार भारत में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का 71 प्रतिशत छः राज्यों में निवास करती है। मध्य प्रदेश में 153-99 लाख, महाराष्ट्र में 73-18 लाख, उड़ीसा में 7-32 लाख, बिहार में 6-17 लाख, गुजरात में 61-62 लाख, राजस्थान में 54-72 लाख, आँध्र प्रदेश में 42 लाख, मेघालय में 15 लाख, पश्चिम बंगाल में 38-09 लाख, असम में 21-74 लाख, कर्नाटक में 91-16 लाख निवास करती है। भारत के अनेक राज्यों में फैले हुए यह आदिवासी हमारे देश के अभिन्न अंग हैं। इतनी बड़ी जनसंख्या आदिवासियों की होने के बावजूद उनकी स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। प्रश्न यह निर्माण होता है कि इतनी समस्याओं का निदान कैसा हो? गरीबी और अशिक्षा का निमुलन करने पर ही आदिवासी के जीवन में कुछ नई रोशनी आ सकती है।

पहले आदिवासियों में पढ़ने की प्रवृत्ति का अभाव था और वे शिक्षा के नाम पर दूर भागते थे, किंतु आज़ादी के बाद से उनमें तनिक सुधार आया है। आदिवासी क्षेत्रों में आश्रम पद्धति विद्यालय खोले गए हैं, जिनके माध्यम से आदिवासी बालकों को आवास, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा तथा पुस्तक-कापी आदि सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं इन्हें काफ़ी लाभ हुआ है। आदिवासियों की तो लिपि भी नहीं थी। पिछले 100-150 साल पूर्व पहली बार इनकी लिपि बनी वह भी ईसाई मिश्नरियों के चलते नार्थ ईस्ट में पाँच हज़ार वर्ष पहले से ही यह साहित्य लोक-साहित्य की शक्ल में मौजूद आदिवासी लोककथाएँ व मिथक सभी शास्त्रों से पुराणे हैं। वेदों में मुंडारी व कुडुख भाषा के शब्द पाये जाते हैं। जो यह सिद्ध करता है कि यह ये भाषाएँ वेदों से पुरानी हैं। वास्तव में मूलधारा का साहित्य तो आदिवासियों और दलितों का साहित्य ही है। पहले वह वाचिक परंपरा में था और अब लेखन में आ रहा है। भले ही लेखन में यह साहित्य थोड़ा कम है, मगर इनका लोक साहित्य विशाल हैं, पूरी मानव संस्कृति इस साहित्य में है।

आदिवासी विमर्श में दूसरी दिक्कत उनकी बोलियों का उपेक्षित किया जाना है। उनकी 600 बोलियाँ है। इनमें से लगभग 90 भाषाओं में साहित्य रचा जा रहा है, दुनिया का कोई ऐसा देश नहीं, जिसमें इतनी भाषाओं में साहित्य रचा जा रहा हो। फिर भी इनकी भाषाएँ मरने दी जा रही हैं। इसलिए एक लिंक भाषा ज़रूरी है, जिसके जरिए उनकी भाषाओं को जोड़ा जा सके। ये लोक प्रायः सुदूर अंचलों में पर्वतों की तराइयों एवं घने जंगलों के मध्य निवास करते हैं। इस क्षेत्र में आवागमन एवं प्रचार-प्रसार के माध्यमों की न्यूनता है। उनके सर्वांगीण विकास के लिए जो विभिन्न कार्यक्रम क्रियान्वित किए जा रहे हैं, उनमे शैक्षणिक विकास के कार्यक्रमों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जन-जातियों एवं आदिवासी क्षेत्रों में उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षा के विकास की जिम्मेदारी आदिम जाति, अनुसूचित जाति एवं पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग को सौंपी गई है। जन-जातियों के छात्रों में शिक्षा की अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। शासन द्वारा छात्रों के लिए निःशुल्क पाठ्य सामग्री एवं छात्रवृत्ति की योजना संचालित है। कुछ चुने हुए क्षेत्रों में जन-जातिय छात्रों को उनकी अपनी-अपनी मातृभाषाओं (आदिवासी) भारत की विभिन्न भाषाओं के अभ्यास के संदर्भ में ग्रीरसन ने 1906 में 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' (भारत की भाषाओं का सर्वे, निरीक्षण) इस ग्रंथ का लेखन किया। उस समय भारत में कुल 872 बोली-भाषाओं का उल्लेख ग्रियर्सन ने किया था। कुल 872 भाषाओं में अनुसूचित जाति एवं जन-जातियों की बोली भाषा के रूप में

दर्ज किया गया है। अर्थात् इन बोली-भाषाओं की कोई लिपि नहीं है और ना ही इनका स्वतंत्र वाङ्मय संसार है। इस प्रकार की बोली भाषा का प्रयोग करने वालों की संख्या कुछ हज़ार तक ही है औसत कुछ अभ्यासकों का मानना है कि उस समय भारतीय संविधान ने केवल 14 भाषाओं को विकसित भाषा का दर्जा दिया था। जन-जातियों को बोली भाषा तथा अपभ्रंश भाषा एक समान ही होते है ऐसा एंग्लसन ने एक जगह विधान किया है। किसी जन-जाति की बोली-भाषा के आधार पर उस जन-जाति की वर्ग संरचना करना इस तथ्य को प्रमाण मानते हुए भारत में आज भी अनुसूचित जाति-जनजाति आदि जमातों का भाषिक वर्गीकरण किया जाता है।

समयानुसार वनवासी टोलियों में वर्ग विभाजन हुआ और उनकी बोली भाषा में अंतर आता गया। सर्वसामान्य आदमी को पहुँचना जहाँ कठिन था ऐसी दुर्गम पहाड़ी घाटियों में रहने वाले आदिवासी समाज की भाषा में भी भेद आता गया, जिसके परिणामस्वरूप बोली और भाषा में अंतर बढ़ता ही गया। इन बोलियों की वर्गवारी, स्थूल रूप से भी करते हैं, तो इनके 30 से भी अधिक गुट दिखाई देते हैं। भाषा विज्ञान के कुछ विद्वानों का मानना हैं कि कुछ ही भाषाओं का प्रभाव अन्यत्र भाषाओं पर लक्षित होता है। समयानुसार जिस भाषा पर प्रमुख भाषा का प्रभाव होता है वह प्रमुख भाषा अन्य भाषाओं को धीरे-धीरे समाप्त करने लगती है, परिणामतः छोटी-छोटी टोलियों और जन-जातियों की बोली भाषा के संबंध में ऐसा दृष्टिकोण रखने वाले भाषाविदों की संख्या भारी है, लेकिन अपने इस तर्क को सिद्ध करने के लिए इनके पास कोई प्रमाण नहीं है। अनेक भाषा, उप-भाषा, बोली भाषा आज भी टिकी हुई है। जिसका कारण, अनेक उच्चवर्णीय भाषिक आक्रमणों के बावजूद इन जन-जातियों ने लिखित साहित्य के बजाय मौखिक साहित्य को पीढ़ी स्थानातंरित करके संभाल रखा है। लोककथा और दंतकथा के माध्यम से अपनी बोली भाषा का जतन किया है। इस बोली भाषा का लिखित साहित्य नहीं है, लिपि नहीं है बावजूद इसके यह बोली-भाषा युगों से अपनी संस्कृति का जतन करते आ रही है।

श्री पी. बी. पंडित दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध भाषाविज्ञ के रूप में कार्यरत थे। अपनी मृत्यु से पूर्व उन्होंने भाषाओं के विकास के संबंध में एक दीर्घ प्रबंध तैयार किया था, जिसमें उन्होंने भारत की भाषाओं की नीति का ब्यौरा प्रस्तुत करते हुए सोवियत यूनियन के भाषिक नीति का भारत के भाषिक नीति किस प्रकार अलग हैं इसकी जानकारी दी थी। सोवियत यूनियन में भी अनेक भाषा होने के कारण भारत के सामने जो भाषाई प्रश्न खड़ा था वही प्रश्न सोवियत यूनियन का भी था, लेकिन सोवियत यूनियन के शासन कर्त्ताओं ने सर्वप्रथम साक्षरता को अग्रक्रम दिया और जिन भाषाओं की लिपि नहीं थीं ऐसी भाषाओं के लिए लिपि निर्माण का कार्य युद्ध स्तर पर अपनाया इस नई लिपी द्वारा प्राथमिक शिक्षा लेने वाली नस्ल को शिक्षित किया और पंधरा वर्ष के अल्प समय में संपूर्ण साक्षरता का संकल्प पूर्ण कर दिखाया। क्षेत्र और स्थलानुसार जो भाषाई भिन्नता थी जगह पर वहाँ उस स्थल लिपी को प्रयुक्त कर भाषाई एक संघता लाने में सोवियत संघ सफ़ल हुआ। भारत में शासन ने कुछ ही भाषाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की जिससे आदिवासी और जन-जातियों में लिपि अभाव रहा, जिससे उनकी स्वयं की भाषा लिखित नहीं है। आज़ादी के 65 वर्षों बाद अभी-अभी आदिवासी विमर्श ने जोर पकड़ा है।

सदियों तक साधी गई चुप्पी को तोड़कर स्थापितों द्वारा बनाए दायरों को विध्वंस करने की चेतना अब आदिवासियों में जन्म ले चुकी है। बदलते परिवेश में वो अपने विस्थापन और सफ़लता से दूर रखे जाने के षड्यंत्र को भलीभाँति पहचान चुका है। जीवन के अनेक पहलुओं से रू-ब-रू कराता आदिवासी लेखन, संघर्ष, उल्लास और आक्रमणता ही आदिवासी विमर्श है। छल, कपट, भेदभाव, ऊँच-नीच से दूर तथा सामाजिक न्याय का पक्षधर आदिवासी साहित्य का आधार आदिवासियों की संस्कृति, भाषा, इतिहास, भूगोल तथा उनके जीवन की अनेक समस्याएँ और प्रकृति के प्रति उनका गहरा लगाव है।

दरअसल आदिवासी विमर्श आदिवासियों की लेखन की प्रेरणा का विमर्श है, वहीं आज वह प्रस्थापितों द्वारा अपनी संस्कृति को नष्ट करने, अपनी संसाधनों पर कब्जा जमाने के षड्यंत्रों के प्रतिरोध की चेतना से भी परिपूर्ण है। आदिवासी में चेतना जगी है। वह नई-नई विचारधाराओं और क्रांतियों से परिचित हुआ। उसने अपने अस्तित्व की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव व अन्याय का बोध भी जगा है। यही बोध उसके साहित्य में झलक रहा है। आदिवासी विमर्श में आदिवासियों में पैदा हुए इस बोध और चेतना का विश्लेषण उनके द्वारा रचित साहित्य के माध्यम से होता है। वह आज अपनी समस्याओं को भाव-भावनाओं को हिंदी की कलम से भी व्यक्त करने लगा है, साथ में अपनी संस्कृति भाषा और अपनी उदात्त जीवन शैली की अभिव्यक्ति से हिंदी को समृद्ध कर रहा है।

हिन्दी विभाग, पीपल्स कॉलेज, नांदेड

कहानी

एक और औरत का वेश्या होना

इंदुमति सरकार

ट्रेन नई दिल्ली के निजामुद्दीन जंक्शन पर पहुँच चुकी थी। ऊपर के बर्थ पर लेटी महिला ने बताया कि यहाँ गाड़ी देर तक रुकती है फिर भी कविता अपना सामान लेकर जल्दी से जल्दी उतरना चाहती थी। आख़िर यही तो वह शहर है जो उसके सपनों को ऊँची उड़ान देगा। इसी जल्दीबाजी में वह एक आंटी से टकरा गई उन्होंने आँखें दिखाते हुए सीधे खड़ा रहने के लिए कहा तो मैंने माँफ़ी माँग ली। गलती मेरी थी। ट्रेन से उतरते ही मेरी दृष्टि भंडारी सर पर गई। उन्होंने मुझे वेलकम वेलकम कहते हुए गले से लगा लिया। मुझे थोड़ा अटपटा तो लगा। फिर सोचा शायद यही यहाँ का कल्चर हो। भंडारी सर जब हमारे गाँव आए थे, तो माँ ने पेपर में छपी मेरी कविता उन्हें दिखाई थी। उस समय कैसा कलेजा फूल गया था उनका। भंडारी सर ने उनकी उम्मीदों को और ज्यादा बढ़ा दिया था।

-आपकी लड़की में बड़ी प्रतिभा है। मेरी मानिए इसे शहर भेज दीजिए। नाम रोशन कर देगी। वहाँ मेरी अच्छी पहचान है बस यों समझ लो साल भर में बड़ी लेखिका बन कर आएगी।

-लेकिन हमारे घर का तो कोई भी शहर में नहीं है किसके भरोसे छोड़े। कही कुछ ऊँच-नीच हो जाए तो? माँ ने चिंता जताई थी।

-अरे आप नाहक चिंता करती है। मैं हूँ न आपका धर्मभाई। कह तो ठीक रहे तो भईया, ले जाओ इसे। इसकी ज़िंदगी सवर जाएगी तो अच्छे घर में ब्याह भी हो जाएगा।

माँ ने आने से पहले बार-बार समझाया था बेटी कोई परेशानी हो तो लौट आइयो तनिक न बिचारियों बस।

भंडारी सर ने कविता के रहने की व्यवस्था मुनिरिया के एक किराये के मकान में कर दी थी। उन्हीं की ही मदद से एक अख़बार में नौकरी भी मिल गई थी। विकली अख़बार था। यहाँ की लड़कियां मुझसे बहुत अलग थी। अब वे अलग थी या मैं, जो भी हो उनका एक ग्रुप हुआ करता था। ऑफिस के बाहर अजीब-अजीब मुद्रा में इन्हें देखने की मुझे आदत हो गई थी। सिगरेट के कश लगाती धुएं से गोल-गोल छल्ले बनाती लड़कियाँ मुझे कभी अच्छी नहीं लगी। एक दिन मैंने ऑफिस के सामने वाली दुकान से एक कोल्डडिंक ली और वही पर बैठ कर पीने लगी तभी उनमें से एक लड़की हाई हिल्स पहने अपनी नंगी बाजुए हिलाती हुई मेरे सामने आ खड़ी हुई। उसकी नाभी में नाक में पहनने वाली रिंग लगी देखकर मुझसे अपनी हंसी रोकी नहीं जा रही थी। उसने अपना एक पाव बैठने वाली जगह पर रखा और मुझसे मेरा नाम पूछने लगी। कविता सिंह सुनकर उसने मेरे डिपार्टमेंट के बारे में पूछा फिर उसी .... ग्रुप में मिल गई। मैं हैरान थी इन्हें भला मेरे नाम से क्या वास्ता। अपनी ड्रिंक ख़त्म करके मैं ऑफिस में चली गई। मेरा ऑफिस मेरे लिए किसी मंदिर की तरह था। इसे सजाने के लिए मैंने अपनी सीट के सामने की वॉल पर राधा कृष्ण की आलिंगनबद्ध तस्वीर लगा रखी थी। सुबह शुरू करने से पहले मैं इनके सामने हाथ जोड़ती और सीट छोड़ते समय भी ऐसा ही करती। मेरे साथ की सीट पर अजय बैठा करता था। वह बहुत ही दिल्लगी पसंद इंसान था। अक्सर टी-टाइम, लंच में कुछ न कुछ दे ही देता लेकिन दोस्ती जैसा कुछ नहीं था। अजय ने थोड़ा उचकते हुए मुझसे पूछा, तो क्या कह रही थी वो?

-कौन मैंने हैरानी से पूछा।

-अरे वही, सुबह वाली बात।

-सुबह...हाँ वो...तो बस मेरा नाम

-तुमने बता दिया?

-हाँ! सुनकर मुस्कुरा दिया था वह।

-क्या हुआ...कोई बात हुई क्या?

-उनसे दूर ही रहना। बस थोड़े को ज्यादा समझो। कहकर वह वापिस अपनी सीट पर बैठ गया था।

मैंने उनसे दूर-दूर रहने की ठान ली। लिफ्ट ठसाठस भरी हुई थी। अनुज से चाहकर भी कुछ पूछ नहीं सकी थी। निकलते हुए उसने थम्स अप का इशारा किया था। मैं चुप थी। क्या जानता है ये, ऐसे ही कुछ भी...। मन में बेचैनी थी नया शहर, नई नौकरी, नए लोग क्या चाहते है मुझसे। रात की चक्की में पिसकर सुबह तक विचारों का आटा मेरे पूरे व्यक्तित्व पर बिखर गया था जिसे झाड़ना ज़रूरी था। खिड़की खुली हुई थी। लोहे की आयताकार सलाखों पर एक नन्हीं

चिड़ियां चोच रगड़ रही थी। कविता क्षण भर के लिए उसे देखती रह गई थी। फिर अपनी डायरी और पेन लेकर बैठ गई। आज उसने पहली बार शहर के तौर तरीक़ों पर या यों कहिए अपना भोगा अनुभव ....

-हाँ, अब कुछ अच्छा लग रहा है कहते हुए वह मुस्कुरा दी। उसे ऐसा लग रहा था जैसे कि वह जिस मकड़जाल से बाहर निकलने की चेष्टा करते-करते उसके केंद्र में पहुंच गई थी अचानक वहाँ तीव्र प्रकाश हो गया हो और वह खुद ब खुद उस जंजाल से मुक्त हो गई हो। सच है बाहरी परिस्थितियाँ आसानी से एक लेखक की संवेदना को जगाती है। उनका लेखन कर संतुष्ट भी तो उसी गति से करती है। कविता ने पीले रंग का अपना चूड़ीदार कुर्त्ता पहन लिया और साथ नीली चुन्नी ओढ़ ली। साथ ही मेल खाती एक छोटी-सी पीली बिंदी, पीली चूड़ियां जैसे अब किसी की कोई परवाह ही न हो।

ऑफिस के बाहर खड़ी लड़कियों ने आज उसे फिर रोक लिया। कविता ने झिझकते हुए पूछा, क्यों आपको हममें इतना इंटररेस्ट क्यों है भला? सभी लड़कियां एक साथ हंस दी थी।

-बस यों ही। कविता बात बस इतनी है हमें तुम पसंद हो। कहते हुए एक लड़की ने कविता की कमर दबा दी।

-हाँ, हाँ, बस इतना भी ही तो तुम चाहो तो ऑफिस के बाद क्लब में हमें जॉइन कर सकती हो?

-मैं शहर में मौज करने नहीं आई हूँ। आप सब से मेरी लाइफ बहुत अलग है। मेरे परिवार से मैं पहली लड़की हूँ जो अकेली शहर आई है। मुझे शहर से बहुत कुछ चाहिए। अपनी पहचान बनानी है मुझे। आप सब बहुत सुंदर है बिलकुल तितलियों की तरह...कोई छू भर ले तो रंगीन हो जाए। लेकिन मैं अगर अभी उड़ूंगी तो हवा होते समय नहीं लगेगा। यह मैं समझती हूँ। कहते हुए कविता दरवाज़ा पार कर अंदर चली गई।

बात बहुत गहरी थी जिसे लड़कियां समझ नहीं सकी थी लेकिन इतना तो वे सभी समझ चुकी थी कि टेढ़ी खीर है।

-जस्ट लीव इट यार, शी इज इंपोसिबल। स्वर में खीझ के साथ क्रोध का पुट था। यह कविता की पहली सफ़लता थी जो उसने शहर पर पाई थी। कविता इस बात को समझ चुकी थी कि अगर यहाँ जीना है तो आँख चुराकर नहीं, आँख मिलाकर बात करनी होगी। धीरे-धीरे उन बिगड़ैल कहलाने वाली लड़कियों से उनकी यारी दोस्ती हो गई थी। अब कविता ऑफिस से पहले का समय इस ग्रुप में इन्हीं लड़कियों के साथ बिताती। वह कभी-कभी ड्रींक न करने की शर्त पर नाइट क्लब भी चली जाती। वहाँ की जलती-बुझती लाइटें, बदलते रंग उसे बड़े लुभावने लगते थे। इतनी लाइटें तो कभी दीवाली पर भी पूरे गाँव में नहीं जली थी। बिजली तो गधे के सिर पर सींघ की तरह थी। लुपलुप करते लैंप से सहसा कोई भभककर अपने यथार्थ में थी। सामने अजय था। वह उसके हाथ हिला रहा था।

-मैडम कहाँ हो? लौट आओ, लौट आओ।

-अरे कही नहीं बस यों ही, तुम यहाँ अचानक।

-कुछ नहीं दोस्तों के साथ हूँ...फोर्स कर रहे थे। लेकिन सच कहूं तो मेरा तो दिन...मेरा मतलब है रात ही बन गई। तुम जो यहाँ मिल गई। कहते हुए उसने अपनी एक आँख टीप दी।

मैं अजय के स्वभाव से परिचित थी इसलिए जानती थी कि उसकी बात पर रिएक्ट करना ओवर रिएक्ट करना ही होगा। सो बात आई-गई हो गई। तभी सूजी कमर हिलाते हुए हमारी ओर आई। उसके हाथ में दो गिलास थे जिन्हें उसने हमें थमा दिया और हूँ हूँ की आवाज़ के साथ फिर उसी दिशा में चली गई जहाँ से आई थी। अनुज ने एक घूंट में गिलास ख़त्म कर दिया और अपना बड़ा-सा मुँह खोल कर सांसे बाहर छोड़ने लगा। इसमें उन्माद जैसा कुछ था। मैंने अपना गिलास साइड में सरका दिया।

-अरे अभी तक पीती नहीं हो?

-नहीं मैंने सधा-सा अपना उत्तर दिया।

-जल्दी ही बदल जाओगी। जानती हो पहले मैं भी नहीं पीता था। लेकिन अब इसे गलत भी नहीं मानता। लाइफ बड़ी छोटी है यार जी लो, खुलकर बिंदास ऐसा लगा जैसे बंद परिंदों को आज़ाद कर दिया गया हो ऐसे उसकी आवाज़ आरोह से अवरोह तक फैल गई थी।

मैं चुप रही क्योंकि अब इससे कुछ कहने सुनने का कोई अर्थ नहीं था। वह अपना अलग राग अलाप रहा था। 'यारो मुझे माफ करना मैं नशे में हूँ' मैंने इशारे से सभी को निकलने के लिए कहा लेकिन अनुज को ऐसा छोड़ा नहीं जा सकता था और उसके घर के बारे में हम जानते भी नहीं थे।

सबको साथ लेकर मैं अपने घर आ गई। रात हम सबने साथ में बिताई। सुबह तक सब नार्मल था। कहते है, दोस्ती का परदा है बेगानगी। अब सब परदे हट गए थे।

-बाथरूप की कड़ी टूटी है कविता। सूजी चिल्लाई

-हाँ यार ठीक करानी है। भूल गई...मैनेज कर ले।

-वॉट...वॉट डू यू मीन मैनेज कर ले। मुझे फ्रेश होना है। मैंने एक चद्दर लेकर दरवाजे पर टिका दी। लो अब ठीक है।

-हाँ...सब सुन लो यहाँ कार्य प्रगति पर है।

-एक और आइडिया है...नहाना और गाना एक साथ हो तो बढ़िया है और ये नियम सब पर लागू है। अब बात खाने की आई। शनिवार नाइट की पार्टी के बाद हम सभी अलसाये थे। खाना बनाने की बात पर समझौता होता है कि जिसका नाम

पहले आता है वही खाना बनाएगा। इस पर अजय कहता है, वह अपने बारे में एक बात बताना तो भूल ही गया, बचपन में उसके पापा ने उसका नाम जेबरा रखा था। तो उसकी जगह कोई और खाना बनाए। खाना बन जाने पर जब खाने की बात आती है तो वह तपाक से कहता है कि पिछड़े का सबसे पहले खिलाना चाहिए था। अब अजय फिर बोल पड़ा वह एक बात बताना भूल गया कि उसके पिता उसे जेबरा नहीं अलजबरा बुलाते थे। तो हम सभी उस पर चढ़ बैठी और उसकी खासी मरम्मत भी की। पूरा दिन ढेर सारी इंग्लिश मूवी चली। इंजॉयमेंट के नाम पर गंदे-गंदे जोक्स, हंसी मजाक चलता रहा। और दिन निकल गया। मंडे की छुट्टी मैंने अप्लाई कर रखी थी। उस दिन मुझे अपनी कविता एक संपादक को दिखानी थी। पुरानी छपी मैग्जीनें व पाण्डुलिपि लेकर मैं एक दफ्तर में बैठी थी। बड़ी राजसीनुमा कुर्सी पर नामी संपादक बैठे थे। आँखों पर गोगलस लगाए, पैरों को टेबिल पर चढ़ाए हुए उन्होंने मुझे बड़ी ही नम्रता से बैठने का इशारा किया। उनके पास समय की कमी थी और मिलने वाले ज्यादा, तो सभी को एक साथ एंटरटेन कर रहे थे। मेरा नंबर आने पर मैंने अपनी कविताएं उनकी ओर बढ़ा दी और बस शुरू हो गई उनकी फिलासफी। मुझे कविता रख कर जाने को कह दिया और गाड़ी में साथ चलते हुए बातें करने का ऑफर या यों समझे आदेश मिला।

-सर, सर मुझे लिखने में बड़ी रुचि है। मैंने लेखिका के लिए गाँव से शहर तक का लंबा फासला तय किया है। अगर आप मौका दे तो...।

-उन्होंने अपना चश्मा नीचे सरकाकर मुझे आँख भर कर देखा और मुस्कुराकर बोले तुम मेरी बेटी की तरह हो। मुझसे जितना बन पड़ेगा मैं करूंगा।

मीटिंग बहुत अच्छी रही। मैं खुश थी। सबसे बड़ी बात एक उम्मीद थी कि बस दो-चार साल तक साहित्य की दुनिया में कविता सिंह एक जाना माना नाम हो जाएगा। मेरे भी नाम किताबें आएगी, सम्मान रखने के लिए एक अलग रैक होगी। रीलिज पार्टी हो या कविता पाठ सभी जगह से इनविटिशनस आएंगे। ले जाने के लिए गाड़ियां भेजी जाएगी। काश ये सपना सच हो जाए....काश।

हफ़्ता भर बीता था कि मेरे मोबाइल पर एक अननोन नंबर फ्लैश हुआ। पूछने पर पता चला नामी संपादक महोदय कविता में कुछ फेरबदल चाहते है। मिलना होगा। मैंने ऑफिस से छुट्टी न लेकर शाम को मिलने का अपाईंटमेंट ले लिया। यह मुलाकात उनके घर पर हुई। घर बड़ा ही आलीशान था। अब वो दिन तो रहे नहीं जब संपादक कंगाल, फटेहाल हुआ करते थे जो अपना हाथ-गोड़ जला पत्रिका संपादित करते थे। ये आधुनिक सभ्य समाज के असभ्य संपादक है। इसका अंदाजा लगते मुझे देर न लगी। उनका प्रपोजल बिना किसी लाग-लपेट के मेरे सामने था। तुम्हें आगे बढ़ना है। मैं तुम्हें आगे बढ़ाऊंगा। पूरी तरह बस मेरी बात मान लो फिर देखो फर्श से अर्श तक का सफर कैसे मिनटों में तय होता है। कितनों को बना दिया। गिनों तो उंगलिया शिथिल पड़ जाएगी और बड़े-बड़े नाम उन्होंने मेरे सामने तुरूप के पत्तों की तरह बिछा दिए।

-मैं वर्जिन हूँ सर। नारी को अपनी देह से मुक्ति पानी होगी तभी तो वह पुरुषवादी समाज के सामने टिकी रह पाएगी। अभी तुम यंग हो। तुम जिस साहित्य को जानती समझती हो वह उससे बहुत अलग है। यहाँ स्थापित लेखकों को जानती समझती हो वह उससे बहुत अलग है। यहाँ स्थापित लेखकों का एक ग्रुप है। तुम या कोई भी नया लेखक बिना हमारी मर्जी के आगे नहीं बढ़ सकता। यों समझ लो सफ़लता पाने की कीमत है। चुकाओ और मेरे बगल में तुम्हारी सीट तैयार है। अगर तुममें क्षमता न भी हो तो मैं हूँ न, मैं लिखूँगा तुम्हारे लिए...बस शर्त एक होगी। मैं चुप रही। चाहकर भी बोलने का साहस जुटा नहीं पा रही थी। क्या कहूँ...क्या कह सकती हूँ। एक सपने की कीमत तय हो चुकी थी। मुझे बिछना होगा। देह से आगे निकलकर अपने नाम में सिमटना होगा। गलत-सही की परिभाषा सीखाने वाली माँ को कुछ पता नहीं चलेगा। दिमाग में कुछ कौंधा लेकिन जीत आख़िर संस्कारों की हुई। मैं वैसी लड़की नहीं हूँ सर। मैंने कांपती आवाज़ में कहा।

-अरे तुम नाहक घबराती हो। फ़िल्में देखती हो। बड़ा नाम, बड़ी शोहरत, बड़ा परदा। वहाँ भी कास्टिंग काउच जैसा कुछ होता है न। जिस पर लेटना भी पड़ता है। साहित्य में भी यही सब तो है। डिट्टो। तुम सोच लेना...बस ये याद रखना, मेरे ऑफर के बारे में किसी से मत कहना। कोई विश्वास नहीं करेगा और बदनामी भी तुम्हारी होगी। बाकी जब चाहे आओ जाओ तुम्हारा ही सब है।

इतनी बेशर्मी देख मैं शर्म से लाल थी। जी में आया सब छोड़छाड़ कर वापिस गाँव लौट जाऊँ। लिखना ही छोड़ दूं। ये मेरे बस का रोग नहीं। कुछ दिन तक शांत भी रही कलम कॉपी को हाथ भी नहीं लगाया पर ज्यादा दिन न रह सकी और एक नई कविता तैयार थी। मन फिर उत्साहित था। सोचा एक जगह निराशा मिली तो क्या हुआ। हाथ की पाँचों उंगलियां भी तो एक-सी नहीं होती। दो-चार जगह फिर कविताएं भेज दी। तीन महीने तक इंतज़ार किया। फ़ोन पर फ़ोन...आपकी कविता अच्छी होते हुए भी अस्वीकृत की जा रही है और बेहतर लिखे, शुभकामनाएं जैसे शब्द सुनते-सुनते ऊब हो चली थी। एक दिन तो हद हो गई जब एक संपादक ने कविता छापने को शर्त रखी

सेक्स कर लो... मैं टूट रही थी मेरे सपने मुझमें घुट कर दम तोड़ रहे थे। भंडारी सर ने एक दिन बातों-बातों में पूछ लिया कवयित्री जी कोई नई कविता लिखी हो तो सुनाओ।

-नहीं अब मैं नहीं लिखती। मेरे भीतर का गुबार जैसे फट पड़ा हो। क्यों क्या हुआ? पूछते हुए उनका हाथ मेरे बालों को सहला रहा था। मैंने भंडारी सर को बातें बता दी।

-कविता अभी तुम छोटी हो, बिल्कुल बच्ची हो। इस सब को जितना बड़ा बना कर देखोगी चीज़ें मैग्नीफाइन ग्लास से उतनी ही बड़ा दिखेगी। तुम अब बड़ी हो रही हो। तुम्हारा शरीर भी तो...मैंने देखा उनकी बड़ी-बड़ी आँखें मेरे शरीर का मुआयना कर रही थी। तो कविता ये सब आम है। अब देखों मैंने तुम्हारे कंधे पर हाथ रखा है। तुम्हें कैसा लग रहा है। क्या कुछ महसूस हो रहा है। ज़रूर हो रहा होगा। तो ये जो अहसास है ये गलत नहीं होता। चाहो तो मैं तुम्हें थोड़ा बहुत समय निकाल कर और डिटेल में समझा दूंगा। कुछ बुरा नहीं होता। अपने लक्ष्य पर फोकस करो। तुम्हें बहुत आगे बढ़ना है।

-अच्छा-अच्छा मैं समझ गई भंडारी सर मुझे अभी कहीं जाना है। आपसे बाद में बात करती हूँ। दरवाज़ा लॉक कर दीजिएगा। अपने को छुड़ाकर मैं सूजी के घर....

-अब तू ही बता सूजी...भंडारी भी।

-चील मार यार ये भंडारी हो या तिवारी। साले सब एक ही थाली के चट्टे-बट्टे है। सबके सामने हो तो बेटी-बेटी, अकेले में बोटी। छोड़ साली यह शरम्-वरम् एक बार कपड़े उतार कर तो देख, हम सब नंगे है।

-नहीं सूजी। नहीं तू खुद को देख। तुझे दिल्ली आए कितना समय हो गया। अभी तक तेरा एक स्टेप भी ग्रोथ नहीं हुआ। डिंक नहीं करना, डांस नहीं, कंप्रोमाइज नहीं, सैक्स नहीं। हर चीज़ पर नो, नो, नो। नो बेबी ऐसा नहीं होता। यस बोलना सीख। यहाँ एक संपादक की बात नहीं है। लेडी कही भी सेफ नहीं है। तू बिलीव नहीं करेगी। पंद्रह साल की उम्र में मुझ पर रेप हुआ था। वो भी मेरे अंकल...रीयल अंकल ने। अब सब चलता है। इतना बड़ा इश्यू मत बना।

-मैं गाँव चली जाऊंगी। जा और जाकर क्या कहेगी मॉम से। आई एम ए लूजर। हार कर आ गयी मैं। फॉर गॉड सेक बेबी एक बार फिर सोचो। अब चलो तुम्हारा मूड़ बनाती हूँ। कहते हुए उसने एक नामी राइटर की बुक मेरे हाथ पर रख दी। मेरी महत्वकांक्षा अंगारे की तरह दहक रही थी। मन में उथल-पुथल थी इतनी कि आमतौर पर स्पष्ट दिखने वाली मेरे विचारों की छाया भी आज गड्डमड्ड थी। उस रात मैं सूजी के साथ डिस्क गई। खूब नाची बेफ़िक्र, पैग पर पैग लगाए। झूलती रही कभी इसकी ओर कभी उसकी ओर चिड़ियां बनकर फुदकती रही। डाल-डाल का फर्क़ न रहा। रात भी कितनी अजीब होती है। इसमें स्वयं इतना नशा होता है। जिसके आगे दुनिया के तमाम अडिक्शन बौने ही होते है। अब से पहले मैं इतना भी तो नहीं समझती थी। प्रकृति के तोहफ़े को नकारती रही। इससे क्या मिला मुझे सिर्फ़ ऐसी वर्जिनिटी जिसका सिर्फ मुझे ही बोध हो। करता रहे कोई बदनामी। मैं आज़ाद हूँ, अकेली हूँ। किसी की दबैल नहीं। मेरा जो जी चाहेगा वही करूंगी। आई हैव डिसाइडेड। कम से कम बीस साल बाद मन में गिल्ट तो नहीं होगा कि अगर मैंने समझौता कर लिया होता तो यह पछतावा नहीं होता। सूजी मेरी हितचिंतक है और फिर फर्क़ की क्या पड़ता है।

कविता और तिवारी कमरे में थे। नौकरों को डिस्टरब न करने की सख्त हिदायत थी। तिवारी जी के सहयोग से कविता सिंह की कविता हर मैग्जीन में छपने लगी थी। 'नया सवेरा' में एक नया कॉलम जोड़ दिया गया जिसकी लेखिका कविता थी। उसकी रातें तिवारी के घर बीतती थी। अपना सपना पूरा करने के लिए उसने ऑफिस भी छोड़ दिया था।

आज तिवारी ने कविता की किताब का लोकार्पण रखा है। बड़े-बड़े संपादक, प्रकाशक, लेखक, सुधी पाठकों की आवाजाही है। मंच पर तिवारी और कविता के साथ-साथ कई नामी साहित्यकार है। आज तो कविता पहचानी नहीं जा रही है। हर कोई उसे बधाई दे रहा था। एक बड़ा मंच उसे मिल गया था जहाँ से वह चाहे कह सकती थी और जमाने को उसे सुनना ही होगा। कविता ने हिंदी साहित्यजगत और अपने को परिमार्जित करने की बात कहते हुए तिवारी जी को अपना रोल मॉडल बता दिया। इस पर तिवारी जी ने वही से बैठे-बैठे अपनी बात कही-कविता जब मेरे पास आई थी तो मुझे इसमें क्षमता दिखी थी और कहीं-न-कहीं इसमें मुझे अपनी बेटी दिखती है। इसलिए मैं इसका साथ दे रहा हूँ। आप सब भी नई लेखिका को अपना आशीर्वाद दे, कहते हुए तिवारी ने उसके सिर पर हाथ रख दिया जो वहाँ से खिसकते-खिसकते उसके देह से होकर हाथों तक आ गया। जैसे सिलन पड़ी जमीन पर पाँव रखते ही अचानक फिसल कर कोई पानी में गोते खा रहा हो। सभी यह देख रहे थे। आपस में कानाफूसी भी हो रही थी लेकिन इस उगते सूरज को कोई चाहकर भी मुट्ठी में बंद नहीं कर सकता था। कविता एक उगते सूरज की तरह साहित्य के आकाश में जगमगा रही थी। जल्द ही उसके जीवन की सांध्य बेला भी आ गई। अब कविता देर रात तक बाहर घूमती। इंडिया गेट रात में कितना आकर्षक लगता है तभी तो उसने जाना था। रोशनी का उसके हृदय से सीधा संबंध था। चाहे क्लब की जलती बुझती लाइटें हो या एकटक देखती रोशनी।

सभी तो उसकी आँखों को सुकून देती थी। गाँव में कहाँ इतनी आज़ादी थी। माँ का आदेश था दिनभर चाहे जहाँ हुल्लड़ मचाती फिरो। सांझ को घर द्वार से बाहर न रहियो। उसके कच्चे मकान में एक बल्ब था जिसे वह घंटों देखा करती थी। अक्सर इतनी देर तक देखने से आँखें इतनी चुंधिया जाती कि नज़र हटाने पर आँखों के सामने अंधेरा घिर आता। क्षण भर का यह अंधेरा उसे असहनीय था। बस लगता था किसी भी उपाय से घर में दो चार बल्ब और लगा दूं। लेकिन ऐसा हो न सका था।

तिवारी के साथ घर आकर ठाठ से नौकरों को चाय लाने का आदेश देती। नौकर हाथ बांधे जी में जवाब देते। एक दिन कविता ने सुन लिया। दो नौकर आपस में बतिया रहे थे।

-अरे लूज करेक्टर है। संपादक जी तो बड़े आदमी है थोड़ा बहुत ऐब तो चलता है। लेकिन ये लड़की इस उमर में ही अपना तिरिया चरितर दिखा रही है।

-हाँ, अब क्या कहूँ तुम्हें। कल मैंने इस साहब के जांघों पर बैठे देखा था। राम-राम कैसी बेहया है। रखैल बनकर पड़ी है इस घर में। उससे तो हम ही बेहतर है जो इज्ज़त की दो रोटी मेहनत से कमाते है।

अचानक तूफ़ान घिर आया। आँखों के सामने अंधेरा हो गया। फलों से लदा पेड़ तूफ़ान के हाथों में था। झप-झपा झप कर टपकते फलों की तरह उसके आँसू झर रहे थे। शब्दों की कचोट इतनी थी कि बार-बार मुँह धोने पर भी आँख भर आती थी। मन में आया कि अभी जाऊँ और दो कौड़ी के इन नौकरों को उनकी औकात बता दूं। मैं लेखिका हूँ। मेरी किताब आई है। आज अगर मैं सफ़ल हूँ तो किसी के बाप की गू धोकर नहीं अपने बल पर और मुझे रखैल कहते है। गुस्से में कविता का अंग फड़क रहा था। रात के दस बजे थे। तिवारी जी ने उसे खाना खाने के लिए बुलाया तो कविता ने बुझी आँखों से उन पर एक दृष्टि डाली। उसे ऐसा लगा कि वह तो तिवारी की थाली में पड़ा हुआ स्वीट है। जिसका लुफ्त वे अंत में लेते है।

-मुझे भूख नहीं है।

-क्यों भई कुछ उलटा-पुलटा खा लिया है क्या? तबीयत तो सही है। अच्छा तुम बैठी रहो, मैं तुम्हें देखते ही खाऊँगा। कविता मन मसोसकर बैठी रही। किसी स्टैच्यू की तरह।

-अच्छा बताओ आज क्या पढ़ा। रोज थोड़ा समय निकाल कर पढ़ लिया करो तुम्हारे काम आयेगा।

-तिवारी जी एक बात पूछूँ?

-हाँ, हाँ क्या चाहिए तुम्हें अब।

-मैं जानना चाहती थी हम साल भर से साथ है। आप मेरा कितना ख़्याल भी करते है। क्या हम इस रिश्ते को एक नाम नहीं दे सकते।

-क्या चाहती हो तुम? तिवारी की आँखों में प्रश्नचिह्न था।

-मतलब...क्यों न हम विवाह कर ले। अब तो मैं भी सफ़ल हो गई हूँ। कितना अच्छा हो हम समाज के सामने एक हो जाए। सब मिथकों को दरकिनार कर।

-क्या बकवास है? दिमाग तो ठीक है न।

-मैं आपको बहुत सुखी रखूंगी। आपके लिए खाना बनाऊँगी, कपड़े धोऊँगी, व्रत रखूंगी। हर वो काम जो एक पत्नी करती है। बस मेरी माँग में चुटकी भर सिंदूर भर दीजिए। मैं आपकी ऋणी होकर रहूंगी। कविता का स्वर कांप रहा था। फिर भी बदहवास वह बोले जा रही थी।

-ये कैसा पागलपन है कविता। तुम इतनी जल्दी भूल गई हमारे बीच क्या डील हुई थी। तुम जैसी सैकड़ों को मैंने बनाया है। अगर मैं सबसे शादी-वादी करता रहूं तो तो तो...तिवारी के शब्द आपस में उलझ रहे थे। कविता सिसकती रही।

-एक बात अच्छे से समझ लो। अभी इन चक्करों में मत पड़ो और फिर ज़रूरत भी क्या है। सुहागरात का मज़ा लो। तैयार होकर ऊपर कमरे में आ जाओ। मैं तुम्हारा मूड़ बनाता हूँ। कहकर तिवारी जी ने वॉस-बेसिन में मुँह धोया और कमरे में चले गए।

कविता मन मसोस कर रह गई। यही तो उसकी हक़ीक़त है। मैंने जो किया अपनी मर्जी से। कम्प्रोमाइज़ कर लो या बड़े आदमी की रखैल मतलब तो एक ही निकलता है। कविता अनमने से सीढ़ियां चढ़ने लगी। तिवारी जी सूती कपड़े वाला अपना अंडरवियर पहने बगलों में परफ्यूम छिड़क रहे थे। कविता को देखते ही उसे बाहों में भर लिया और उसके बंधे बाल खोल दिए। चलो थोड़ा डांस करते है। गाने का वाल्यूम तेज़ करते हुए फिर कविता का सूट सलवार उतार देते है। कब इन बंधनों में रहोगी। देखो मुझे तुम्हारा कितना ख़्याल है और वे नाच उठते है। उनकी बढ़ी तोंद, लटका हुआ नाड़ा। कविता ने अपने जिस भावी पति की कल्पनाएं की थी वह बिलकुल इससे उलट थी। यह तो उसके किसी मुनिम या नौकर की तरह लगता है। सोचते हुए जोर से हँस दी थी और तिवारी जी ने सोचा उन्होंने किला फतेह कर लिया।

'नया सवेरा' का नया अंक आ गया था। लोगों के फ़ोन धड़ाधड़ आ रहे थे। अख़बार में तो इतना तक लिखा था कविता की कविताएं उसे राष्ट्रकवि का ख़िताब दिलवाएगी। अब उसके अंदर का सब तनाव जाता रहा। चेहरे पर संतोष था। इतिहास में अपना नाम दर्ज कराने की उम्मीद थी। पच्चीस वर्ष में कितनी लड़कियां इस स्थान पर पहुंचती है। जहाँ पर मैं हूँ।

ठंडी सांस लेते हुए सोफे पर पसर जाती है। अचानक ही सुधाकर कमरे में आ जाते है। कविता अपने में खोई मचल रही है। सुधाकर गला खंखरते है।

-ओ माफ़ कीजिएगा।

-माफी तो मुझे माँगनी चाहिए। बिना पूछे आ धमका। बस खुद को रोक नहीं पाया था। कितना अच्छा लिखा है आपने स्त्री-विमर्श पर 'हर औरत वेश्या होती है' कितनी गूढ़ बात इतनी सरलता से। चाहता तो फ़ोन भी कर सकता था लेकिन आर्टिकल पढ़ते ही सब छोड़ कर दौड़ा हूँ। आपको हृदय से बधाई कविता जी। क्या आप हमारे लिए एक लेख लिखेगी। प्लीज़ मना मत कीजिएगा। मैं 'सुबह सवेरे' का एडीटर हूँ। पंद्राह हज़ार कॉपियां निकलती है हमारी। गुलजार से लेकर बच्चन तक पूरे देशभर में जाती है। मैं आपका बड़ा अहसान मानूंगा।

आज साल भर बाद वास्तव में किसी मर्द की बातें मुझे लुभा रही थी। इनकी सौम्य छवि मेरे सपनों के राजकुमार से कितनी मिलती थी। जो भी हो अब तिवारी के नीचे से निकलकर मैंने सुधाकर को जॉइन कर लिया। मैग्जीनों में मेरे बारे में बाकायदा बहुत कुछ लिखा गया। कही सवाल? कही जवाब। क्या कर रही है कविता सिंह आजकल? तिवारी की जगह सुधाकर।

तिवारी जी ने भी काफ़ी मिट्टी पलीद की। लेकिन ये कहना न भूले वो मेरी बेटी की तरह है। कीचड़ उनकी तरफ कम मेरी ओर ज्यादा था या यों कहिए कीचड़ में ही कविता थी। बड़े ठसके से स्त्री-विमर्श लिख रही थी। जिसकी जितनी आलोचना...मैग्जीन की उतनी पब्लिसिटी। सुधाकर मुझसे खुश थे। पर इन अफवाहों से नाखुश। प्रेम में स्टेटमेंट दे दिया। सब कहानी है। बकवास है। उनकी सीधी उंगली तिवारी पर थी। मीडिया से उनकी सांठ-गांठ बता दी। ये वो दौर था। जब 'सुबह सवेरे' हाइप पर और 'नया सवेरा' आलोचनाओं के घेरे में था। कुशल कहानी लेखकों ने मुझे मध्य में रख कर कई कहानियां गढ़ी। मेरे भविष्य की कयासे लगाई गई। अतीत को कुरेदा गया। वर्तमान को सुधाकर का बेडरूम बताते हुए हंस रहे थे साहित्यकार। इन सबको मैं पॉजिटिवली लेती रही। नहीं जानती थी बदनाम हुए तो क्या हुआ नाम तो हुआ वाली कहावत पुरुषों के लिए अधिक फायदेमंद होती है। इस लीक पर चलने वाली औरतों को तो वेश्या ही समझ लिया जाता है। मैंने सोचा, सुधाकर मेरे साथ है। मेरे ख़ातिर सबसे लड़ाई मोल ले रहे है। कोई तो वजह होगी ही। यह लेखक संपादक का रिश्ता नहीं था। बल्कि कुछ ऐसा है जो अपने चरम सीमा पर था लेकिन उन्होंने अपने से कुछ नहीं कहा था। मजबूरन मुझे उनसे पूछना पड़ा था।

-सुधाकर आप मेरी इतनी परवाह क्यों करते है? मैंने उनकी आँखों में झांका था।

-परवाह करना तो मेरी मजबूरी है भई। आख़िर हम तुम एक ही कश्ती के सवार है। या तो दम साधे पड़े रहो या फिर हल्ला बोल दो। मेरे सामने कोई और विकल्प नहीं है।

-तो दम साधे पड़े रहते औरों की तरह...।

सुधाकर ने अपनी ऐनक उतारकर टेबिल पर रख दी और दोनों हाथों से आँखों को हल्का-हल्का दबाने लगे।

मैंने आगे बढ़कर अपने दोनों हाथ उनकी आँखों पर रख दिए। ये पहली बार था जब हम इतना पास थे।

-अरे तुम रहने दो कविता उन्होंने संकोच से कहा था।

-पर मैं कहाँ मानी थी। ...दिखाते हुए मैंने उन्हें खींच कर कुर्सी पर बिठा दिया और उनका माथा, सिर सहलाने लगी। मेरे हाथों की कोमलता मुझे महसूस होने लगी। पर सुधाकर चुप थे। तुम्हें ये सब करने की ज़रूरत नहीं है। हिंदी साहित्यजगत की प्रसिद्ध लेखिका मेरा सिर दबाए ये ठीक नहीं है। अगर बात बाहर आ गई तो हड़कंप मच जाएगी।

-मैं एक औरत भी तो हूँ सुधाकर। क्या तुम्हें ये दिखाई नहीं देता? क्या तुम्हें कुछ महसूस नहीं होता या तुम भी मुझे बाज़ारू समझते हो। मैं दृढ़ स्वर में बोली थी।

-नहीं कविता प्लीज़ ऐसा मत करो। मैंने तुम्हें कभी उस नज़र से देखा ही नहीं है।

-तो आपको मैं पंसद नहीं?

-ऐसा नहीं है तुम मुझे बहुत पसंद हो।

-आप खुलकर कहे...अपनी बात रखने का आपको पूरा अधिकार है। आप चाहे तो मेरा निमंत्रण अस्वीकार भी कर सकते है।

-कविता बात को आगे बढ़ाने से पहले मैं तुमसे एक बात क्लीयर कर दूं। मैं विवाहित हूँ। मेरी पत्नी से मेरे संबंध आम पति पत्नी की तरह नहीं है। हम दोनों के बीच एक खाई है जिसे पार नहीं किया जा सकता। म्यूचुअल अंडरस्टैडिंग नहीं है। हाँ, तुम मुझे अच्छी लगती हो बहुत अच्छी लेकिन हमारे रिश्ते का कोई भविष्य नहीं है। तुम यंग हो, प्रसिद्ध हो। तुम्हारे एक इशारे पर हज़ारों...।

-हज़ारों के फेर में मैं नहीं पड़ती सुधाकर। आप अपनी पत्नी से तलाक़ ले सकते है। इसमें तो कोई आपत्ति नहीं होगी आपको...या है?

-हाँ, मैं इस विषय में सोच रहा हूँ। एकाएक सुधाकर ने बात बदलते हुए कहाँ, क्या अब भी तुम मेरे लिए वही फिलिंग्स रखती हो जो पहले थी।

-क्यों नहीं, जब मैंने तुम्हें प्रेम किया था तो मैं तुम्हारा स्टेट्स नहीं जानती थी। विवाहित होने से तुम बंधन में हो सकते हो। लेकिन मैं तो बंधन मुक्त ही हूँ न। इससे भला मेरे प्रेम में कोताही कैसी। तुम्हारी पैठ मेरी आत्मा तक हो चुकी है। कविता के ये शब्द हृदय से उद्‌गारित थे उसकी आँखें ढबढबाने लगी थी।

-अब और कुछ न कहो। सुधाकर ने कविता को अपने में समेट लिया। सुधाकर और कविता किसी खेले हुए खिलाड़ी की तरह अपनी पूरी ताकत से इस नए संबंध की पौध को सींचने लगे।

बसंत आया था। मैग्जीन के कवर पेज पर गुलमोहर के पेड़ पर फूल खिले थे। सूखी पत्तियां नीचे बिखरी थी। हरा, पीला, लाल रंग मिलकर बहुत ही अद्‌भुत लग रहा था। लेकिन कविता को कुछ अखर रहा था। सुधाकर मुझे कवर पेज कुछ ठीक नहीं लग रहा। ग्राफिक्स से बात करनी होगी।

-नहीं मुझे तो ऐसा नहीं लगता। बिलकुल परफेक्ट है। थीम को अच्छे से हाईलाइट कर रहा है।

-अच्छा...। थोड़ा सोचते हुए मुझे लगता है इसमें अगर. ..अगर ठीक इस पेड़ के नीचे किसी युवती को फूल चुनते हुए दिखाया जाए और यहाँ इस जगह पर (अपने पेन से दिखाते हुए) पीला रंग थोड़ा ज्यादा हो तो मज़ा आ जाए।

-कविता मैं तुम्हें डिसएपाइंट नहीं करना चाहता। जैसा जा रहा है जाने दो यार। -चलो ठीक है। अच्छा ये बताओ आज रात का क्या प्लान है। कविता की आँखों में शरारत थी।

-सॉरी अगेन...आज रात पत्नी के साथ बाहर डिनर पर जाना है। हम कल चलेंगे। सुधाकर तुम्हारे डाइवोर्स के केस का क्या हुआ। कब की डेट है। मैं भी चलू? नहीं-नहीं तुम क्यों परेशान होती हो। प्रेसवालों की नज़र पड़ गई तो बैठे बिठाए ही उन्हें नया मसाला मिल जाएगा।

-ठीक है मुझे तुम पर विश्वास है सुधाकर। लेकिन याद रखना मैंने जीवन में कभी पलट कर नहीं देखा। इसे मेरी दौड़ कहो या आगे बढ़ने की लालसा। पीछे पलट कर देखने वाले पीछे ही रह जाते है। तुम मेरे साथ चलना क़दम से क़दम मिलाकर, मेरे विचारों को तुमसे खाद मिलती है। भावना अधिक पुष्ट होती है।

-मैं तुम्हें समझता हूँ डियर। अच्छा अब मुझे जाना होगा कहते हुए वह कविता के होठ चूम लेता है। कविता उसे रोकना चाहती है लेकिन वह निकल जाता है। कविता अतृप्त है। उसे ऐसा लग रहा है जैसे सुधाकर से उसे और प्रेम चाहिए लेकिन उसके हिस्से तो...। सैकड़ों अतृप्त इच्छाएं उछाले मार रही थी और वो प्यासी। समुंदर को लौटते देखने पर विवश। तभी फ़ोन घरघराया फ़ोन पर अजय था। कविता को ढेरों बधाइयां देने के बाद आख़िर पूछने लगा, सुधाकर से क्या चल रहा है?

कविता बिफर गई। क्या...क्या चल रहा है। वो मेरे संपादक है। क्या इसके अलावा कुछ हो ये आवश्यक है।

-अरे नहीं यार...वो लोग। लोग तो कुछ भी कहेंगे...माई फुट। तू सही कह रही है वैसे भी वो मैरिड है और अब तो फिर होप से है। मतलब । अरे यार वो क्या कहते है लोकल लैंग्वेज में बोले तो बाप बनने वाले है...

-क्या...मैं चीख पड़ी। मैं...मैं तुमसे बाद में बात करती हूँ। तैरने की कोशिश में किसी नौसिखिया तैराक की तरह मैं पानी में अंदर बाहर डुबकियां ले रही थीं। पानी आँतों में घुस रहा था। रात भर सोचती रही। स्त्री-विमर्श लिखने वाली स्त्री अपने सुनहले सपनों की तालाश में पुरुषों के हाथ की कठपुतली भी रही। स्त्री स्वतंत्रता, प्रेम, विवाह कुछ भी तो नहीं जान समझ सकी। मुझसे अधिक तो भंडारी, तिवारी, सुधाकर स्त्री की मनोवृत्ति से परिचित है। एक पुरुष मुझे बहलाकर शहर ले आया। इस्तेमाल करना चाहा। पुरुष दो, पुरुष तीन ने इस्तेमाल किया। इन्हें पुरुष कहने भर से मुझे ऐतराज़ होता है। इनके लिए अलग लिंग है नपुंसक लिंग। पुरुष से तो पौरुष का भान होता है, स्त्री से ममता का। पुरुष का काम इज़्ज़त बचाना है कि दाना डालकर चबूतरों पर बैठे रहना। आश्वस्त करके शिकार बनाने वाला कम से कम मेरी दृष्टि में पुरुष नहीं है ...कायर है। लेकिन मैं कमजोर नहीं। तिवारी, सुधाकर की बखिया मैं उधेडूंगी। मोर्चा निकालूंगी।

कविता ने प्रेस के सामने सब सच-सच बता दिया। लेकिन अब उसकी बात सुनने वाला कोई न था। तिवारी, सुधाकर ने संधि कर ली थी। दोनों ने कविता को अपमानित करते हुए कहा, कविता को उन्होंने स्वयं चरित्रहीन होने के कारण निकाला था। बदला लेने के लिए ये उन पर कीचड़ उछाल रही है।

कविता बहुत रोई। सच का एक-एक पहलू सामने रखा पर बेअसर। लोगों ने कहा जल्दी सफ़लता पाने का कोई नया हथकंडा है। न्यूज़ में बने रहने के लिए आज की पीढ़ी कुछ भी कर सकती है। उसी रात साहित्यकारों की महफिल में जाम टकराए। ये जीत का जश्न था। कविता एक कोने में उदास खड़ी थी। उसे समझा दिया गया था। अगर वह इस चक्रव्यूह से निकली तो कही की न रहेगी। पचास-पचास रुपये में बिकने से अच्छा है। वह इन सबको पब्लिसिटी स्टंट की तरह ले और नाम बनाए। लेकिन दण्ड उसे मिलना तय था। पार्टी के अंत उसे किसी की रात रंगीन करती होगी चाहे तो बदले में रुपया भी ले सकती है। ये वह तय करेगी। आख़िर ये महत्त्वकांक्षाओं का शहर है।

आर जेड जी 502, राजनगर, पालम कॉलोनी, नई दिल्ली-77

कहानी

तस्वीर पर चढ़े फूल

फरहा सईद

शनिवार को सुबह अमित की आँख खुली तो देखा सूर्य देव दर्शन दे चुके थे। उनकी स्वर्णिम किरणों का प्रकाश खिड़की के झीने पर्दे को भेदता हुआ भीतर आ रहा था।

'अरे बाप रे। पापा को चाय देनी है।'

कंबल एक तरफ फेंकता अमित एक दम उठ बैठा। उसने एक प्यार भरी नज़र शालिनी पर डाली जो अभी तक मस्त सोई थी। जैसे कोई मीठा सपना देख रही हो।

'बेचारी एक सप्ताह ही तो मिलता है सोने को वरना सुबह इतने काम होते है कि देर तक सोने की सोच भी नहीं सकती। इसे अभी कुछ देर और सोने देता हूँ।'

अमित जैसे खुद से बातें करता शालिनी को सोते छोड़ कर सीढ़ियाँ उतरता नीचे रसोई में आ गया। चाय का पानी चढ़ाते उसने खिड़की से बाहर झाँका तो पाया, पापा बागीचे में नहीं थे। प्रातः इसी समय पापा डहलिया के रंग-बिरंगे फूल चुनते हुए मिलते हैं। मौसम के फूल चुन्ना और उसे सुंदर माला में पिरोकर माँ की तस्वीर पर चढ़ा देना उनकी दिनचर्या में शामिल था।

अक्टूबर माह समाप्त होने को आ रहा था और हल्की-हल्की ठंड पड़नी आरम्भ हो गई थी। डहलिया ही ऐसे फूल है जो पहली बर्फ पड़ने तक खूब लिखते हैं। उसके बाद सब बंजर/वीराना। फिर कम से कम चार महीने बाग़ीचे में जाना एक दम बंद। न कोई फूल न कोई पत्ता और ऊपर से वर्षा की किचकिच। भला ऐसे में कोई बाग़ीचे का क्या आनंद लेगा? लेकिन पापा को इससे क्या फर्क़ पड़ता है। वह तो ठंड बढ़ने से पहले ही भारत लौट जाते हैं। उन्हें अमेरिका की सर्दी बिल्कुल नहीं सुहाती और फिर उनका गठिया का रोग भी बहुत बढ़ जाता है। हाँ, गर्मी के मौसम में पापा 5-6 महीने यहाँ अमेरिका में ही गुज़ारते हैं। कभी मेरे पास और कभी कैलिफोनिया में छोटी बहन अंजु के पास। हम दोनों भाई बहन डॉक्टर बनने के बाद अमेरिका क्या आये कि बस यहीं के हो कर रहे गये। सच ही यह माया नगरी है। जो इसके माया जाल में एक बार उलझा बस निकल ही नहीं पाया। अब तो भारत गये भी बरसों बीत गये हैं। माँ तो कल की चल बसीं और पापा हर साल यहाँ आ ही जाते हैं। दूर के संबंधियों से मिलने भला कौन इतनी दूर से जाता है? हम तो पापा से भी कहते हैं कि वहाँ का मकान बेच कर यहीं हमारे पास रहें पर भला उनसे कहाँ मकान का मोह छूटता है। कहते हैं वहाँ मेरी लाखों स्मृतियाँ हैं। उसकी एक-एक ईंट मैंने बड़े चाव से लगवाई है। अपने जीते जी इसे न बेचूँगा। वाह रे, भले मानस। ईंट पत्थर के मकान से इतनी आसक्ति और जो हाड़ माँस की थी उसकी अवहेलना।

अमित के विचारो की शृंखला तब टूटी जब चाय उबल-उबल कर गिरनी शुरू हो गई। उसने जल्दी से चूल्हा बंद किया। चाय दो कपों मे उड़ेली और पापा के कमरे में प्रवेश किया। उसने देखा पापा बिस्तर पर रजाई ओढ़े आँखें बंद किये बैठे थे।

'पापा चाय। आज आप बाग़ीचे में नहीं गये? तबियत तो ठीक है?' अमित ने माथा छूते हुए कई सवाल कर डाले।

'बेटा, आज सर्दी कुछ अधिक लग रही है और घुटनों में भी बहुत दर्द है।'

'हाँ, आपका माथा कुछ गर्म लग रहा है। मैं ऐसा करता हूँ शालिनी से कहता हूँ कल डॉक्टर को फ़ोन करके अपाईंटमेंट ले लेगी। हो सकता है वह कुछ दवा बदल दे।'

'बेटा, रहने दो। अब तुम मेरी वापसी की टिकट कटा ही दो। मेरे लिये वापिस जाना ही ठीक रहेगा।'

'अरे, चले जाईयेगा। दो-तीन हफ़्ते और रुक जाईये। आपके आने से घर में कितनी रौनक आ जाती है। मोनू और गुड़िया आपके साथ कितना खुश रहते हैं।'

'पर बेटे, यह गठिया का दर्द मुझे मार दे रहा है।'

'अभी छोड़िये, यह गर्म-गर्म चाय पीजिये। यह जाने वाले विषय पर फिर बात करेंगे।'

बात टालने के लिये अमित अपनी चाय लेकर बैठक में आ गया और सोफे पर बैठ कर चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। अचानक चाय पीते-पीते उसकी दृष्टि सामने फायर प्लेस के ऊपर लगी माँ की बड़ी-सी तस्वीर पर ठहर गई। कल के बासी फूलों की माला के पीछे से झाँकती माँ की विषाद युक्त हंसी जैसे कह रही हो-

''पत्थर पड़े सनम तेरे उल्टे प्यार पे।

मरने के बाद आया है रोने मज़ार पे।''

उसके दिमाग रूपी सागर में विचारों की लहरे ज़ोर-ज़ोर से अठखेलियाँ करने लगीं और उसे बहुत पीछे बहा ले गई। उसने भी माँ को तब तक ठीक से नहीं समझ पाया जब तक शालिनी पत्नी बनकर उसके जीवन में नहीं आई। तब तक पापा जो कहते उसे वही ठीक लगता। पापा सबके साथ बहुत अच्छे हैं। उसे और अंजू को भी प्यार देने में कोई कमी नहीं रखी पर माँ को मानसिक यातना देने में पता नहीं उन्हें कौन-सा अपूर्व सुख मिलता था? यह तो ईश्वर जाने।

जैसे पापा ने माँ से बड़े चाव से विवाह किया था। उनके स्निध सौंदर्य को देखते ही रीझ उठे थे। दो भाई बहनों में बुआ बड़ी और पापा छोटे हैं। बुआ परी-सी सुंदर और पढ़ने में तेज़ थीं। सौंदर्य और बुद्धि का ऐसा समन्वय यदा-कदा ही देखने को मिलता है। इसलिये परिवार में सबकी लाड़ली थीं। इसी लाड़-प्यार ने उन्हें ज़िंदगी और उदंड बना दिया था। जिस वस्तु की कामना करती उसे पा कर ही छोड़ती। ऐसे मे डॉक्टरी की पढ़ाई करती बुआ का दिल अपने एक शूद्र सहपाठी पर आ गया और उससे विवाह करने की इच्छा बलवती हो उठी। अपनी इस इच्छा को प्रकट करते ही घर में तूफान आ गया। कहाँ हम उच्च कुलीन ब्राह्मण, परी-सी सुंदर बुआ और कहाँ वह काला कौआ शूद्र। यह विवाह कदापि संभव न था। दादी तो बिना स्नान किये मंदिर मे गलती से भी किसी को पाँव न धरने देती। यदि कूड़ा लेने आई जमादारनी की छाया भी उन पर पड़ जाती तो वह तुरंत उठकर स्नान करती। इस पर विडंवना यह कि घर का होने वाला जमाई शूद्र। छीः छीः असंभव। उन्होंने बवाल मचा दिया पर बुआ भी कहाँ मानने वाली थीं। अपनी इस ज़िद के पीछे घर परिवार सब त्याग दिया। अदालत में विवाह कर लिया और अपना स्वप्निल संसार बसाने चल दीं।

बुआ परिवार से निष्कासित कर दी गई। पूरे परिवार ने उनसे संबंध तोड़ने की शपथ ली। दादा-दादी बिल्कुल टूट गये। ऐसे में उनको संभालने के लिये बहू की खोज शुरू हुई ताकि सुशील बहू आकर सारे परिवार को संभाल ले। माँ के रूप में ऐसी बहू उन्हें मिल भी गई।

पापा औसत बुद्धि और साधारण व्यक्तित्व के स्वामी थे। शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने कोई विशेष उपलब्धि प्राप्त नहीं की थी और स्वयं कोई नौकरी करने के बजाय दादा जी के ही व्यवसाय से जुड़ गये थे। किंतु माँ सुंदर प्रखर बुद्धि और सुदर्शन व्यक्तित्व की स्वामिनी थीं। जिससे भी मिलती अपनी एक छाप छोड़ देतीं। माँ का परिवार मध्यम वर्गीय था। वह नाना जी की पाँच पुत्रियों में सबसे बड़ी थीं। बिना दहेज के संपन्न हुए हमारे खाते-पीते परिवार में उनके विवाह से नाना जी ने एक पुत्री के बोझ से मुक्ति पाई। माँ की इच्छा-अनिच्छा जानने की आवश्यकता भी उन्होंने न समझी। स्नातकोत्तर करने के पश्चात् माँ भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा की तैयारी में थीं। अपने बिखरते सपनों को अपने आँचल में समेटे माँ चुपचाप ससुराल चली आई। अपनी आंतरिक पीड़ा को किसी पर प्रकट भी नहीं होने दिया। तन-मन से सबकी सेवा की। अपने आचरण और सुस्वाभाव से सारे परिवार का मन मोह लिया। पापा भी इतनी सुंदर और सुशील पत्नी पाकर निहाल हो उठे दो वर्ष बीतते-बीतते मेरा जन्म हो गया और फिर एक वर्ष बाद अंजू आ गई। घर मे खुशी की लहर दौड़ गई। सब कुछ अच्छा चल रहा था। बुआ का दिया घाव कुछ-कुछ भरने लगा था।

माँ को अब लगने लगा कि वह एक अच्छी माँ है, पत्नी है और अच्छी बहू भी हैं। पर जीवन रूपी चलचित्र के इन तीन पात्रों को निभाते-निभाते उनका अपना अस्तित्व कहीं विलीन हो गया है। उनकी मृत इच्छायें जैसे फिर जीवंत हो उठी। वास्तव में इच्छायें कभी मरती नहीं, सुप्त अवस्था में चली जाती हैं। चिंगारी को जैसे ही हवा मिले वह भड़क कर गोला बन जाती है। कुछ ऐसे ही माँ के साथ भी हुआ। उनकी प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में बैठने की इच्छा इतनी बलवती हुई कि वह दादा जी से आज्ञा लेने जा पहुँची। दादाजी उनके सेवाभाव से इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने तथास्तु कहने में तनिक भी देर न लगाई। पापा ने भी कोई विरोध प्रकट न किया।

धुन की पक्की माँ ने पूर्ण तैयारी के साथ परीक्षा दी और अपने प्रथम प्रयास में ही परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। माँ के हर्षोल्लास का ठिकाना न था। पापा भी माँ को खुश देख कर खुश थे। इसके बाद माँ ने कभी पीछे मुड़ कर नहीं देखा। एक के बाद एक उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ती गई। धन, यश और प्रसिद्धि सभी उनके चरण स्पर्श करने लगे लेकिन पापा उनसे दूर से दूर छिटकते गये। पापा को लगता जैसे उनका क़द माँ के सामने बहुत छोटा हो गया है। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के आगे वह बड़ा असहज अनुभव करते उन्होंने अपने व्यवसाय से ध्यान हटा कर धर्म में अधिक ध्यान देना शुरू कर दिया। व्यवसाय धीरे-धीरे बैठने लगा।

माँ के साथ ऐसा नहीं था कि उन्होंने अपनी बढ़ती व्यस्तता के साथ घर या बच्चों पर ध्यान देना बंद कर दिया था। मुझे और अंजू को पढ़ाने-लिखाने और अच्छे संस्कार देने में माँ का सर्वश्रेष्ठ योगदान रहा। माँ वर्क-लाईफ बैलेंस का अनूठा उदाहरण थी। पापा धर्म-कर्म में लीन पारिवारिक कर्त्तव्यों से विमुख होते गये। धीरे-धीरे जीवन का सारा भार माँ के

कंधों पर आ पड़ा। पापा उनसे दूर से दूर होते गये। उनकी छोटी और बड़ी हर इच्छा का अनादर करना जैसे पापा के जीवन का ध्येय बन गया। उनकी शारिरिक और मानसिक इच्छाओं को अनदेखा कर उनको अपूर्व सुख मिलता। माँ कभी समझाती और कभी झगड़ती पर पापा अपनी ज़िद पर अड़े रहते। शायद माँ की सफ़लता उन्हें अपनी हर विफ़लता का कारण लगती। धीरे-धीरे माँ ने उनसे कुछ भी कहना छोड़ दिया और अपने कैरियर, हम दोनों भाई-बहन के लालन-पालन और समाज सेवा में स्वयं को व्यस्त कर लिया।

मैं आठवीं कक्षा में थी कि दादी का देहांत हो गया। दादा जी पहले गुज़र चुके थे। पापा बिल्कुल अकेले हो गये। ऐसे में बुआ की हमारे घर में घुसने का बहाना मिल गया? पापा ने उन्हें नहीं रोका। ममता का आँचल पसारे जब वह पापा की ओर उन्मुख हुई तो पापा उसमें लिपटते चले गये।

विवाहोपरांत उन्होंने और उनके पति ने मिल कर नर्सिंग होम खोला और खूब धन बटोरा। सांसारिक एश्वर्य की उनके पास कोई कमी न थी पर मन का कोई कोना .... अपनो से बिछुड़ने का दुःख कहीं गहरे तक बैठ गया था। फिर प्रकृति ने भी उनके मुँह पर कसकर तमाचा मारा था। एक पुत्र और वह भी मंदबुद्धि।

बुआ अब अक्सर हमारे घर आने लगीं। जब भी आती उपहारों से हमें लाद देती। खुलकर अपनी अमीरी का प्रदर्शन करती। वह शायद पैसे के बल पर अपना खोया हुआ प्यार खरीद लेना चाहती थी। निर्धन तो खैर हम हरगिज न थे पर माँ ने कभी हमें धन का दुरूपयोग करने की अनुमति नहीं दी थी। हम संयमित और अनुशासित जीवन जी रहे थे। बुआ का आना मुझे और अंजू को बहुत अच्छा लगता क्योंकि वह हम पर बहुत अनाप-शनाप खर्च करती। कभी होटल, कभी सिनेमा, मंहगें कपड़े, चॉकलेट और खिलौने। जिस वस्तु पर हम हाथ रखते फौरन ख़रीद देती। बच्चों को और क्या चाहिये? उस समय बुआ हमें माँ की तुलना में अधिक अच्छी लगती। पापा तो खैर फूले न समाते। उन्हें अवसर मिल जाता हमें माँ के विरूद्ध भड़काने का। पापा जब हमें सिखाते कि माँ कितनी कठोर और कृपण हैं तो हमें उसी में सच्चाई नज़र आती। आख़िर बच्चों की बुद्धि सही और ग़लत में अंतर कहा कर पाती है?

माँ का व्यक्तित्व जैसे बुआ को चुनौती देता हुआ प्रतीत होता। माँ सौंदर्य में बुआ से उन्नीस नहीं कुछ इक्कीस ही ठहरती थीं। माँ के व्यक्तित्व की गरिमा, सादगी और सुधड़ता बुआ के फूहड़ और उच्श्रृंखला व्यक्तित्व पर भारी पड़ती। ऊपर से उनकी प्रखर बुद्धि और योग्यता सदा ही लोगों के आकर्षण का केंद्र होती। बुआ सब कुछ पैसे से ख़रीद कर प्राप्त कर लेना चाहती थी। उन्हें अपनी और परायो का प्यार मिल भी जाता पर वो अस्थायी होता पर पापा को अवसर मिल जाता बुआ की माँ से तुलना कर उन्हें श्रेष्ठ सिद्ध करने का। माँ जी न जाने किस मिट्टी की बनी थी? टूट कर बिखरने का नाम न था। सब कुछ सहती गई और अपने मार्ग से न डिगी। ऐसा लगता है जैसे ईश्वर ने उन्हें एक मिशन पर भेजा था। मिशन पूरा किया और एक दिन बिना सूचना के वापिस चली गई। एक रात सोई तो सुबह उठी ही नहीं।

माँ के गुज़र जाने के बाद शालिनी मेरे जीवन में आई उसके साथ से मैंने स्त्री के पत्नी रूप को जाना। यह जाना कि पत्नी के रूप में स्त्री कितनी समर्पित है। पुरुष और उसके परिवार के लिये अपना हर सुख भुला देती है। इस पर पुरुष उससे अधिक और अधिक बलिदान की कामना करता है। काश वह उसके छोटे-छोटे सुखों का, छोटी-छोटी इच्छाओं का आदर करता तो बदले में और भी बड़े सुख पाता। कम से कम जीवन के अंतिम पड़ाव पर पापा की भाँति अकेला न खड़ा होता।

माँ के पास जीवन में बहुत सारे विकल्प थे। वह पापा को छोड़ सकती थी। अपने मन के कैनवस पर दूसरे पुरुष के प्यार के रंग भर सकती थी पर उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि जीवन संग्राम में विजयी होना बहुत कठिन और पीठ दिखाकर भाग जाना बहुत सरल है। माँ न सदा अपने लिये कठिन पथ का चुनाव किया था। मैंने उनकी डायरी में पढ़ा था। उन्होंने लिखा था-''वह पथ क्या, पथिक कुशलता क्या, जिस पथ पर बिखरे शूल न हो।/नाविक का धैर्य परीक्षा क्या, जब धारा ही प्रतिकूल न हो।।''

शालिनि मेरे और मेरे परिवार के लिये सारा दिन खटती है। मुझे इसका एहसास है इसलिये मैं उसके सुख की कामना करता हूँ और उसकी छोटी-छोटी इच्छाओं का आदर करता हूँ क्योंकि मुझे फूल बाग़ीचें में अच्छे लगते हैं तस्वीर पर नहीं।

20520 2nd Drive South East Bothell,
WASHINGTON 98012

कहानी

कोयला भई न राख

डॉ. हस्सान अहमद आज़मी

भतीजी की शादी में शरीक़ होने की तैयारियाँ उसने तारीख़ तय होने से पहले ही शुरू कर दी थी और वो इतने पहले करती भी क्यूँ नहीं, आख़िर पहली भतीजी की शादी थी। उसके ज़हन पर मायका इस तरह सवार था कि उठते बैठते, उसके ख़्यालात मायके की तरफ़ चले जाते, कभी घर सामने होता तो कभी घर के पीछे लगे हुये आमों के दरख़्त। वो मायका में तमाम बहन-भाइयों में सबसे बड़ी थी। इसीलिये शादी में चार-पाँच दिन पहले ही बुला ली गयी थी। दूसरी बहनें बस दो एक रोज़ पहले आयीं।

भतीजी की रुख़सती के बाद उसकी छोटी बहनें और दूसरे तमाम रिश्तेदार उसी दिन अपने-अपने घर चले गये थे कि उन्हें घर की ज़िम्मेदारियों से फ़ुर्सत नहीं थी। मायके के पड़ोस वाले गाँव में उसकी नंद ब्याही थी। मंझला बेटा शादी में शरीक़ होने आया तो रुखसती के बाद वो अपनी फूफी से मिलने चला गया क्योंकि घर वापसी का प्रोग्राम एक दिन बाद का था।

भतीजी की रुख़सती क्या हुई कि शादी की सारी गहमागहमी थम-सी गयी। जो थोड़ा बहुत काम इधर-उधर फैला रह गया था। उन्हें निपटानें में इतना वक्त लगा कि सूरज डूब गया। भूख तो किसी को नहीं थी। हाँ, थकन से बदन निढाल ज़रूर हो रहा था। लिहाज़ा रस्मन थोड़ा बहुत खाकर अपनी-अपनी चादर तान ली। उसके लिये एक अलग कमरे में सोने का इंतजाम किया गया था। वो जब कभी मायके आती तो इसी कमरे में अपने बूढ़े बालदैन से देर तक बातें करती, आज वो अकेली सो रही थी। थकन के बावजूद उसकी आँखों से नींद ग़ायब थी। उसका ज़ेहन बार-बार भतीजी के आँसुओं की तरफ़ चला जाता। रुख़सत होते हुए कितना रो रही थी वो। उसका अपना घर घुट रहा था। नया घर और उस घर के नये लोग? उसके चेहरे से एक अज़ीब सी बेचैनी ज़ाहिर हो रही थी। उसका रो-रो कर बुरा हाल हो रहा था। लेकिन एक दिन ऐसा भी आयेगा कि मेरी तरह उसे भी अपनी मसरूफ़ ज़िंदगी से दो-चार दिन मायके के लिये निकाल पाना मुश्किल हो जायेगा। वो इन्हीं ख़्यालात में गुम किसी और ज़माने में पहुँच गयी थी। उसकी अभी उम्र ही क्या थी। अभी ठीक से बड़ी भी नहीं हुयी थी कि उसके कान इस जुमले से आशना हो चुके थे कि ''बेटियां तो परायी अमानत हैं इन्हें दूसरे घर जाना हैं।'' ये जुमला उसे बार-बार परेशान करता। वो सोचती कि जिस घर में उसने जन्म लिया है। जिस जगह उसने आँखें खोली हैं। जहाँ उसने ज़िंदगी के बेहद हसीन रात-दिन गुज़ारे है, क्या वाकई यह उसका अपना घर नहीं है? अगर नहीं है तो फिर कौन-सा घर मेरा है? वो इन्हीं सवालात के जवाब तलाश कर रही थी कि उसके कानों में शहनाई गूँजने लगी। वो दुल्हन बनी। फिर एक के बाद एक कई बच्चों की माँ। वो शादी के बाद काफ़ी दिनों तक ससुराल में नहीं के बराबर ही रही। लेकिन जब सुसराल जाना शुरू हुआ तो रफ़्ता वहीं की हो के रह गयी। मायके आना-जाना तो था लेकिन सिर्फ़ ख़ास मौकों पर। उसे फ़ुर्सत ही नहीं मिलती थी और फिर सास-ससुर के इंतेक़ाल के बाद तो ससुराल की सारी ज़िम्मेदारी उसी के सर आ गयी थी। उसके अपने बच्चे बड़े हो गये थे। सबसे छोटा बारहवीं पास कर चुका था। दो बड़े बच्चों की शादी हो चुकी थी उनके भी अपने बच्चे थे। बेटी ससुराल में खुश थी। बेटे इतने फरमाबरदार कि हर काम में माँ की इजाज़त ज़रूरी समझते। हर छोटे-बड़े मामले में उससे मशवरा लिया जाता। घरेलू ज़िम्मेदारियों से फ़ुर्सत मिलती तो अपने पोते-पोतियों को कहानियाँ सुनाने बैठ जाती। दादी की गैर मौजूदगी पोते-पोतियों पर गुज़रतीं वो भी पोते-पोतियों के बगैर खुद को अधूरा महसूस करती। वो अपनी इन घरेलू ज़िम्मेदारियों में ऐसी खोयी कि ज़ेहन पर मायके की बनी हुयी तस्वीरें धीरे-धीरे धुंधली होने लगी। लेकिन इस सबके बावजूद जब कभी कोई बात निकल आती और नौबत मिसाल तक पहुँच जाती तो बेसाख्ता उसकी जुबान से निकल जाता कि ''मेरे घर ऐसा नहीं, ऐसे होता है।''

वक्त गुज़रता रहा। वालदैन के इंतेक़ाल के बाद उसका मायका दो हिस्सों में बँट गया। दोनों भाइयों ने अपनी-अपनी दुनिया बसा ली थी। उनके अपने बच्चे थे जिसमें दो एक की शादी भी हो गयी थी। इन बच्चों के अपने बच्चे थे। वालदैन के इंतेक़ाल के बाद जब वो मायके जाती तो उसकी ख़ातिर तवाज़ों में किसी तरह की कोई कमी ज़ाहिर नहीं होती थी। लेकिन

आँगन में खेलने वाले बच्चों की आँखों में वो मुहब्बत और प्यार नज़र नहीं आता जो उसके अपने सगे या चचेरे बहन भाइयों में था। इसलिये उसे अपनी ख़ातिर तवज़ो भारी लगती। भाइयों के बच्चों ने पढ़ाई मुकम्मल कर ली थी जो बाकी थे वो अभी छोटे थे। जिन बच्चों ने तालीम पूरी कर ली थी वो अमली ज़िंदगी में क़दम रख चुके थे इसलिए उन्हें फ़ुर्सत कम थीं। छोटे बच्चे अजनबीयत की वजह से घुल-मिल नहीं पाते थे। वो अपनी -अपनी ज़िंदगी में खुश थे।

उसने अपने इर्द-गिर्द पड़ी चारपाइयों पर निगाह डाली। ख़ाली थी। शदीद तन्हाई का एहसास हुआ और उसका यह एहसास इतनी शिद्दत अख्तियार कर गया कि उसका अपना वजूद धीरे-धीर तहलील होने लगा। उसने ज़हन से ख़्यालात को निकालने के लिए करवट ली। लेकिन ख़्यालात का सिलसिला जारी रहा। उसके अपने छोटे भाई और उसकी बीवी की सूरत सामने आ गयी। भाई इंतजामात में लगा हुआ था बीवी उसका हाथ बटाती और फ़ुर्सत मिलती तो घर में आये मेहमानों की ख़ातिर में लग जाती। मेहमानों की लिस्ट में उसका नाम भी शामिल था। उसकी अपनी यही ख़ातिर तवाज़ों उसे परेशान कर देती। ये उसका अपना घर है। उसके अपने वालदैन का घर। जहाँ वह पैदा हुई, पली बढ़ी। उसकी कितनी हसीन यादें यहाँ से वाबस्ता है। शादी ब्याह हो या अक़ीक़ा, भाई-बहनों में सबसे बड़ी होने की वज़ह से घर के तमाम मामलों में उसकी मौजूदगी लाज़मी हुआ करती थी। इस घर की हर चीज़ पर उसका अख़्तियार था। लेकिन अब ये मेहमानों जैसा सलूक आख़िर क्यूँ? वो जवाब तलाश करने की कोशिश करती। उसे महसूस होता कि चचाजाद भाइयों के बच्चों के साथ उसके अपने भतीजे-भतीजियों का रवैया भी उसके लिये मेहमानों जैसा है। ये लोग ऐसा क्यूँ करते है। क्या मैं इस घर की सदस्य नहीं हूँ या ये घर मेरा नहीं है। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। ये घर, ये दरो-दीवार वही हैं। घर के पीछे अब्बा के हाथों लगाये गये आम के पेड़ .... वैसे ही है। इनमें भी कुछ तबदीलियाँ नहीं हुई है। मगर घर के सामने ....वाला नीम का साया हर पेड़ जिसको दादा ने लगाया था, जिसकी डालियों पर वो झूला झूलती थी अब नहीं रहा। उसने अपने इर्द-गिर्द पड़ी चारपाइयों पर नज़र दौड़ाई, ख़ाली थीं। दिल में एक हूक़-सी उठी। आँखें भर आयी, और वो तनहा देर तक रोती रही।

सुबह नाश्ते के बाद वो चाय पी ही रही थी कि घर के बाहरी दरवाज़े पर गाड़ी के रुकने की आवाज़ आयी। उसका मंझला बेटा था। उसने चाय की प्याली किनारे रख दी। नक़ाब हाथ में लिया, एक नज़र घर के दरो-दीवार पर डाली। घर के पीछे बाग़ीचें की तरफ़ गयी। बाग़ के पेड़ उसे उदास-उदास नज़रों से देखते हुए नज़र आये। वो देर तक उनके दरमियान गुमसुम खड़ी रही फिर घर में वापस चली आयी। भाई के छोटे बच्चों और पोते .... में खेल रहे थे एक नज़र उन पर डाली और बाहर निकल आयी। बाहर नीम का सायादार दरख़्त जिसकी बूढ़ी आँखों में एक दिन और एक .... हुआ करती थी अपनी जगह मौजूद था। उसका दिल भर आया। बढ़ कर गाड़ी पर बैठ गयी और फिर एक हसरत भरी निगाह घर पर डाली, छोटा भाई और उसकी बीवी दजवाज़े पर खड़े थे। गाड़ी चलने लगी और फिर घर धुधंला होता हुआ आँसुओं में कहीं खो गया।

पृ. 52 का शेष भाग.....

41- Mk- t; idk'k dne	tkfr ,d foe'k	275
42- ekrk ilkn	nfyr lkfgR; e ie[k fo/kk,	180
43- Mk- lj'k	fgUnh vkj ejkBh nfyr lkfgR; % ryukRed	450
44- Mk- vkgky ekgu	dFkkdkj ukfljk 'kek	450
45- Mk- vejh'k	ckxn l ckgj½dFkkdkj ukfljk 'kek ij dfnr½	400
46- Mk- j?kjkt x.kifr	efgyk vkRedFkk y[ku e ukjh	295
47- fxfj'k dkf'kn	nfyr lkfgR; % idfr vkj lnHk	450
48- d- l/kk	vk/kfud fgUnh dfork e nfyr ukjh	250
49- Mk- fot; jkmr	ukfljk 'kek % 0;fDrRo vkj dfrRo	500
50- Mk- bejku ijot	vf/kdkjk dk mRl%_Xon	290
51- Mk- f'kopju ilkn	Q.kh'oj ukFk j.kh ;xpruk ,o eY; ck/k	450
52- Mk- fo".k ljon	dFkkdkj dey'oj	275
53- Mk- jkexkiky flg	i;ktu eyd Hkk"kk vkj vuokn	595
54- Mk- jkexkiky flg	fgnh e ehfM;k y[ku vkj vuokn	325
55- Mk- Kkuh noh	Hkh"e lkguh d miU;klk e lkekftd&pruk	150
64- Mk- jkexkiky flg	vuokn d fofo/k ifji{;	450

वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़

205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002, मो. 09044918670

देवेंद्र कुमार मिश्र की दो कविताएं

आकाश हो गई

तुम्हारा प्रेम
देह के पार से
शुरू हुआ
और तुम विद्रोही बनी रहीं।
टूटी-फूटी सजीव चीज़ों को
जोड़ने की कला तुममें
कहाँ से आई
हाँ, प्रेम से ही आई।
तुम्हारा रिश्ता बनाना और निभाना
वो भी संसार के
मान-अपमान को पीते
और देहातीत होकर जीते
उर्मि तुम क्या हो
सीता नहीं
उनके पास और उनसे दूर
राम थे
उर्मिला तुम
नहीं तुमसे दूर थे लखन
तुमने यादों का सहारा लिया
उम्मीदों से संजोया खुद को
और उर्मि आप तो
सीता और उर्मिला से भी
दो-चार क़दम आगे चली गई।
निश्चित ही यह विशुद्ध प्रेम था
और इस प्रेम में तुम बंधी नहीं हो,
उठी हो और फैलकर
आकाश हो गई हो।

0

स्वार्थ

मन उचाट-सा हो गया
अब कुछ अच्छा नहीं लगता
कोई भी अपना नहीं लगता।
देख लिया तह तक जाकर
जीवन की डोर बंधी है
जिन रिश्तों से नातों से
वो डोर अब टूटी की तब टूटी।
उड़ती हुई पतंग को
संभाले रखने की कोशिश
ही करते रहना हरदम तो
संभव नहीं।
अंदर रिश्तों में
बहुत गहरे में
भी दलदल है
मिट्टी है
अपने को कीचड़ में
फंसाने के अलावा कुछ ही नहीं।
शुद्ध-साफ धुला मंजा कुछ भी नहीं।
कहीं न कहीं कोई न कोई स्वार्थ है ही
भले ही कर्त्तव्यों के नाम पर हो
या अधिकारों का माँग पत्र हो।
सिद्ध न कर सके खुद को
तो उपेक्षा के भाव
दिखने ही लगते हैं चेहरे पर
तुम मौन होकर तिरस्कार करो
या बोलकर बहिष्कार
किसी भी बहाने से खीजो।
उभरकर आ जाता है स्वार्थ
भले ही वे संबंध रक्त के क्यों न हों
अगर मन ही टूट गया तो
रक्त का बहना तो थमेगा ही।

पाटनी कॉलोनी, भरत नगर, चंदनगाँव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
480001

व्यंग्य

मैट्रिक फेल–बी.ए. पास करे

केवल गोस्वामी

मैं दसवीं कक्षा में चौथीबार फेल हुआ तो पिताजी ने मुझे घर से निकल जाने की धमकी दे दी किंतु मुझे पिताजी की गीदड़ भभकियों के बारे में बहुत पहले से मालूम हो चुका था। अपने खून-पसीनें की कमाई से बनाए अपने मकान से किराएदार को तो निकाल नहीं पाए मुझे क्या निकालेगें इसलिए मैंने पिताजी की धमकी को उसी तरह लिया जैसे हमारे किराएदार ने लिया था।

अकस्मात् परिवार के मंच पर चाचाजी की एण्ट्री हुई। हमारे चाचा गुणी व्यक्ति है। उनके पास हर समस्या का 'रेडीमेड' हल रहता है। बोले इतना हाय तौबा मचाने की क्या बात है! मैं भी तो दसवीं कक्षा में चार बार फेल हुआ था। अक्लमंदी का सबूत सिर्फ मैट्रिक पास करना नहीं होता।

मैंने चाचा की ओर गर्व से देखा। झक सफेद कुत्ते पायजामे के ऊपर कत्थई रंग की सदरी पहने वह कोई महान् नेता लग रहे थे। उनके दर्शन भरण से ही आदमी में उत्साह की लहर दौड़ जाती थी। स्पर्श कर ले तो सोना बना दें।

अब मेरा पलड़ा भारी था। चाचा भले ही पिताजी से दस बरस छोटे थे, किंतु उनके सामने पिताजी पिद्दी नज़र आते थे। घर के बगल में एक पार्क था, उसका कुछ हिस्सा घेर कर पिताजी ने एक मंदिर बनवा डाला था। टोले मोहल्ले वालों ने आसमान सिर पर उठा किसी .....मोमबत्तियां डाल कर समूह में जंतर-मंतर पर भी गए किंतु हुआ क्या वही हुआ जो अन्ना के लोकपाल बिल का हुआ था। चाचा की पहुंच चाँद तक थी सो मंदिर नहीं गिरा। पिताजी तब से उस युवा नेता का लोहा मान गए।

पिताजी स्वभाव से यो भी गरीब आदमी हैं। यानी खुद शिकार नहीं मार सकते कोई मार कर ला दे तो उसे खाने में उन्हें कोई गुरेज नहीं। चाचा ने मंदिर नहीं गिरने दिया तो पिताजी का उत्साह बढ़ गया। लगे हाथ मंदिर की दीवार से सटा कर चार दुकाने भी बनवा डाली। धूप अगरबत्ती, सील-बताशे, नारियल और फिर हलवाई की तलाश में भक्तगण आखिर कहां-कहां मारे-मारे फिरेगे? यो तो वह शुद्ध परोपकारी और मानवीय लाभ था, लेकिन कुछ सिरफिरो को इसमें भी राजनीति एवं स्वार्थ नज़र आया। इससे पहले कि कोई ज्यादा चू-चपड़ करता। दृश्य पर पुनः चाचाजी अवतरित हुए। वही झक सफेद कुर्त्ता पायजामा ऊपर से कत्थई रंग की सदरी उनके कसरती शरीर पर खूब फबती थी वो अगर इसे सीकिया पहलवान भी धारण करते तो उनके शरीर में भी फौलादी शक्ति आ जाती। इस पोशाक का जादू ही कुछ ऐसा था।

चाचाजी ने आनन-फानन में शहरी विकास मंत्री से दुकानों का उद्घाटन करवा डाला। भोज में विरोधियों को भी न्यौता दिया और विडियों कैसेट भी बनवा लिया। मंत्री के साथ पिता और चाचा की तस्वीर दुकानों को टांग दी गई। अब किसकी मजाल कि उस तरफ आँख भी उठाता।

चाचा कह रहे थे-''मैं भी मैट्रिक में चार बार फेल हुआ। यह तो हमारी पारिवारिक परंपरा है।'' मैं उत्साह से फूला नहीं समा रहा था। पहली बार मुझे इस परिवार का सदस्य होने पर इतना गर्व हुआ, किंतु पिताजी को मेरा यह उत्साह अच्छा नहीं लगा, चाचा से बोले ''तेरी बात और थी।''

चाचा भी उसी लहज़े में बोले। ''क्यों मेरी बात और क्यों थीं? यह भी तो उसी परिवार का लड़का है। याद है बिट्टो चौथी जमात में ही सोलह बरस की हो गई थी। उन दिनों शादी ब्याह के लिए मैट्रिक फेल भी बहुत बड़ी योग्यता मानी जाती थी।'' चाचा ने गर्व से पिता की ओर देखा।

''यह टैक्ट होते हैं भाई जी। हमने तब सीखे थे। ये टैक्ट जब हमसे दसवीं की परीक्षा पास नहीं हो रही थी। उन दिनों हमारे एक मित्र ने हमें एक इश्तहार दिखाया था-दसवीं फेल बी. ए. पास करे- बस इसी इश्तहार ने हमारी काया पलट कर दी।''

''मित्र ने हमारा फार्म भरा, अपनी फ़ोटो उस पर चिपकाई बस केवल नाम हमारा था बाकी सारी मेहनत उसी की थी। परीक्षा उसने दी ग्रेजुएट हम हुए।'' चाचा ने ताली बजा कर अपना चिर परिचित ठहाका लगाया।

मैं सोच रहा था जैसे परिलोक में पहुंच गया होऊँ जहाँ चाचा जैसे देवदूत एक के बाद एक कई सफलता के कई द्वार खोलते चले जा रहे है और मैं इठलाते हुए उनको प्रवेश कर रहा

हूँ।

"फिर हम राजनीति में आ गए। यह हमारी नियति नहीं थी बल्कि राजनीति को हमारी और हमें राजनीति की ज़रूरत थी। 'मेड फार ईच अदर' चाचा ने अर्थपूर्ण दृष्टि से पिताजी की ओर देख-"अब आप ही बताईए उस दिन को आज तक हमने कही मात खाई है? मिट्टी में हाथ डाला तो सोना हो गयी। मुर्दे को हाथ लगाया तो उठकर संसद की ओर भागने लगा।"

"याद है जिस स्कूल में हम चार दफा मैटि ्रक में फेल हुए थे उसी स्कूल के नए भवन की हमने अपने कर कमलों से आधारशिला रखी थी। जिस हैडमास्टर ने बैत से हमारी पिटाई की थी उसी ने उन्हीं हाथों से हमें फूलों के हार पहनाए।" चाचा की आँखों में पावर हाऊस था।

मेरे मन मे आया कि चाचा के चरणों की धूल लेकर माथे पर लगाऊँ। धन्य हैं वह परिवार जहाँ पर चाचा ने जन्म लिया। पता नहीं क्यों मैंने धूल लगाने का इरादा भविष्य पर टाल दिया।

"चुनाव हमारे लिए मन बहलाना है।" चाचा ने बताया। जनता से मन की बात करो। जो विरोधी बोले ठीक उसका उल्टा बोलो! वे कहें देश की सीमाओं पर खतरा है। फौरन कह दो तुम्हारी वजह से। वे कहें देश में भ्रष्टाचार है फौरन कह दो तुम्हारी वजह से। लोकसभा के लिए चुनाव लड़ो और जनता को देश और देश की समस्याओं की जानकारी कभी न होने दो।

यदि लोकसभा का चुनाव हार गये तो राज्य सभा के रास्ते संसद में आ जाओं और केवल सांसद ही नहीं मंत्री भी बनो। अब आप ही बताईए है कहीं रिस्क? बस इसी का नाम राजनीति है। जनता मंत्री की जय जयकार करती है वह चुनाव हारा हुआ हो या जीता हुआ इससे भोली जनता को कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर हमारी छवि तो हाईकमान से बनती है। वही तो सच्ची छवि होती है फिर उसे जनता क्यों नहीं स्वीकारेगी। इसलिए हाईकमान ज़िंदाबाद ज़िंदाबाद हाईकमान मेरे साथ तीन बार कहिए।"

"अब सीमा पर फौज लड़ी और नाम किसका हुआ, हाईकमान का। जैसे हाईकमान ने युद्ध जीता हो। नाम हाईकमान का हुआ क्योंकि हाईकमान ने उन्हें लड़ने का मौका दिया। शहीद हुए वे और राजनीति लाभ हमें हुआ। मौके का फायदा उठाने का नाम ही राजनीति है भाई जी।"

"अणु विस्फोट से हमने क्या कमी किया? कुछ किया वह तो वैज्ञानिको की वर्षों की मेहनत थी, यह महज़ संयोग था कि जिस समय विस्फोट हुआ उस समय देश में हमारी सरकार थी और वाहवाही हमने लूट ली। क्यों न लूटते विरोधियों के द्वारा छाती पीटना हमारे लिए मधुर संगीत है।"

चाचा ने राजनीति का मूलमंत्र जो हमें दिया हम मैटि ्रक में चौथी बार फेल होने का दुख भूल गए बल्कि हम सोच रहे थे मैटि ्रक पास हो गए होते तो आज हम कहीं के न होते, अब तो हम सीधे मंत्री पद के सपने देखने लगे है।

जे 363, सरिता विहार, मथुरा रोड, नई दिल्ली-76

मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में

विभाजित भारत में मुसलमानों की दशा और उनके संघर्ष का उल्लेख मुस्लिम उपन्यासकारों ने बड़ी बेबाकी से किया है। जिसमें राही मासूम रज़ा का आधा गाँव, शानी का काला जल, अब्दुल बिस्मिल्लाह का झीनी-झीनी बीनी चदरियाँ, नासिरा शर्मा का ज़िंदा मुहावरे, मंजूर एहतेशाम का सूखा बरगद, बदीउज्ज़माँ का छाको की वापसी उपन्यास विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों के द्वारा भारतीय समाज के आधुनिक युग के मुस्लिम मन को आसानी से समझा जा सकता है।
मूल्य -299
सम्पर्क- 9044918670

पुस्तक–समीक्षा

औरतों की दुनिया का सच

डॉ. शिवचंद प्रसाद

नारीवादी चिंतकों का मानना है कि मर्दों के द्वारा मर्दवादी दृष्टि से लिखा हुआ साहित्य, समाज का आधा सच है क्योंकि उसमें नारी की व्याख्या पुरुषवादी दृष्टि से की गयी है। इस दृष्टि से मेराज अहमद का वर्ष (2013) प्रकाशित 'आधी दुनिया' उपन्यास को उस आधे सच यानी नारी-विमर्श-केंद्रित उपन्यास कहा जा सकता है। इस कथा-कृति का केंद्र ढहता हुआ सामंतवाद, उसकी 'अहं' प्रवृत्ति है तो दूसरी ओर स्त्री-शिक्षा के प्रति उभरती हुई चेतना है। 'बड़की अम्मा', 'कुच्चा बुआ' और 'उम्मी की अम्मा' आदि मृतप्राय सामंतवाद के प्रतीक पात्र हैं तो 'सज्जो' 'गुल', 'नाज़', 'ताहिरा', 'हुमयरा' आदि नवीन चेतना के। प्रश्न 'ताहिरा' और 'हुमयरा' के अपने-अपने प्रेमियों के साथ पलायन पर किया जा सकता है परंतु मैं इसे सामंतवाद की प्रतिक्रिया मानता हूँ, उस सामंतवाद की प्रतिक्रिया जिसकी रस्सी तो जल गयी हैं परंतु ऐंठ जस-की तस बरक़रार है, ऐसी ऐंठ जो टूटने को तो तैयार है परंतु झुकने की सोच भी नहीं सकती। जो अपनी बेटियों की शादी अपनी तथा-कथित हैसियत की बराबरी वालों के साथ करने में तो सक्षम् है और कम हैसियत वालों के साथ करने में हेठी समझता है। ऐसी स्थिति में जवान लड़कियाँ हुनरमंद नाऊ-दर्जियों के साथ भाग जाती हैं तो इसमें आश्चर्य कैसा 'अतिया' सामंतवाद की बलि चढ़ गयी और 'सद्दो' बलिदान होते-होते बची फिर 'ताहिरा' और 'हुमयरा' बलि की बकरी क्यों बनें। अतः प्रेमियों के साथ भाग खड़ी हुई। वे अपनी देखे या सामंतवाद की कटती नाक को।

उपन्यास का कथा-केंद्र उत्तर-प्रदेश के पूर्वांचल परिक्षेत्र के आज़मगढ़, मऊ और फैज़ाबाद जिले का हैं। बनारस, अलीगढ़ और इलाहाबाद का उल्लेख मात्र है। यह स्त्री-पात्र प्रधान उपन्यास है। पुरुषवादी समाज में स्त्री का परिचय पति या बेटे के माध्यम से होता है, जैसे अमुक की माँ या अमुक की बहू, ठीक उसी प्रकार यहाँ भी उनका परिचय खलील बहू (आसू, अलीम बहू, बहू सज्जो की अम्मा आदि के रूप में होता है। उपन्यास में ये पुरुष नाम भर के लिए हैं, मुख्य भूमिका नारी पात्रों 'बड़की अम्मा', 'कुच्चा बुआ', 'परधान चाची', 'अलीम बहू', 'अतिया', 'सज्जो', 'सद्दो', 'ताहिरा', 'नाज', 'हुमयरा' आदि की ही है। पुरुष पात्रों में कुछ छात्रों के इलाहाबाद, अलीगढ़ पढ़नें, कुछ लोगों के कृषि-कार्य में रत रहने और कुछ के अरब जाने का उल्लेख भी ही है। अरशद भाई जो कथा नायक हो सकते थे, सिर्फ महानगर में पढ़ने और ब्याह करने के लिए रचे गये हैं। कथा-नायिका 'सज्जो' उनकी बड़ी तारीफ़ करती हैं, बल्कि मर-मिटने को तैयार है, उधर अरशद भाई भी सज्जो की अच्छाइयों के पुल बाँधते रहते हैं परंतु ब्याह के बाद ऐसे गायब होते हैं जैसे खरगोश के सिर से सींग, फिर कहाँ की 'सज्जो' और कहाँ के अरशद भाई। उनके लिए परिवार वाले 'बड़की अम्मा' आदि भी बेगाने हो जाते हैं। पाठक को शुरू-शुरू में लगता है कि अरशद भाई चूँकि उच्च-शिक्षा प्राप्त नौजवान हैं, कोई बड़ी भूमिका अवश्य अदा करेंगे पर वे तो ढ़ाँक के पात निकले, बाजी मार ले जाती है- 'सज्जो'। वह आदि से अंत तक सामंतवाद, पठानवाद से मौन संघर्ष करती रहती है और अंत में जीत उसकी होती है।

नायक-नायिका की दृष्टि से देखा जाय तो इस उपन्यास में न कोई नायिका है और न कोई नायक। राही ने 'आधा गाँव' में 'समय' को नायक बनाया है परंतु मेराज तो वह भी नहीं करते हैं, इनके हिसाब से परिवेश और नारी ही इस उपन्यास के नायक या नायिका है। वे भूमिका में लिखते हैं-''जीवन शैली चित्रण के माध्यम से ग्रामीण मुस्लिम समाज के कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिससे उनकी जटिल सामाजिक संरचना दिखावा, दंभ, वर्ग-भेद का जटिल रूप, लड़कियों की शिक्षा के प्रति उदासीनता के फलस्वरूप स्त्री-जीवन की बढ़ती जटिलता, रोजी-रोटी हेतु खाड़ी के देशों में मज़दूरी के लिए जाने वाले पुरुष समाज के कारण औरतों की वियोगजन्य पीड़ा को जाना और समझा जा सके।''

प्रदर्शन, दंभ, जाति और वर्ग-भेद यदि देखना तो बड़की अम्मा, कुच्चा बुआ और उनकी बूढ़ी सहेलियों में देखा जा सकता है। उसी प्रकार परिवार वालों की शिक्षा के प्रति उदासीनता के दुष्परिणामों को झेलने वाली सज्जो है, जो उच्च-शिक्षा के अभाव में न तो स्वावलम्बिनी बन पाती है और

न ही मनोवांछित विवाह ही हो पाता है बल्कि कुँवारी रह जाती है। पतियों के अरब प्रवास के कारण वियोगजन्य पीड़ा और ससुरालियों की घनघोर यातना तो 'अतिया' की जान ही ले लेती है, हाँ 'सद्दो' पीड़ित तो होती हैं परंतु बच जाती है।

'बड़की अम्मा' की पठानी हेकड़ी और 'कुच्चा बुआ' की उनकी तरफ़दारी का दम तो तब निकल जाता है, जब 'ताहिरा' और 'हुमयरा' इनको ठेंगा दिखाकर अपने प्रेमियों 'भवैवा' और 'असफकवा' के साथ घर छोड़कर भाग जाती है। इनमें एक इंजीनियर और दूसरा नाऊ था। इससे पूर्व तो बड़की अम्मा एण्ड कंपनी की बाग़ रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। पठानों के अलावे धुनिया, जुलाहे, कोइरी आदि तो उन्हें ....बची हुई कसर असरफ बाबू ने निकाल दी, अपनी बीवी में ही अपनी इतिश्री करके और परिवार को उपेक्षित करके। इसके बाद तो अपनी नाक पर मक्खी न बैठने देने वाली बड़की अम्मा बिल्कुल टूट जाती हैं अन्यथा क्या मज़ाल कि अम्मा के फरमान के बिना गाँव में एक पत्ता भी हिल जाए। जब चाहें जिसकी शादी तोड़ दें और जोड़ दें, जिसकी इज्ज़त चाहें बख़्श दें या उछाल दें। लड़कियों की पढ़ाई की तो घनघोर दुश्मन हैं। छोटी जातियों की लड़कियों को सज-धज कर पढ़ने जाते देखकर अम्मा और कुच्चा बुआ की आते फुँक जाती हैं। कुच्चा बुआ और 'बड़की अम्मा' का एक वार्तालाप ही पर्याय है- ''देखेव भाभी। (बुआ, अम्मा को भाभी कहती है) दुनिया कहाँ जाते ही। घर में भूजी माँग नहीं, नाँव धन्नू खाँ। अब छोटी जातियन में भी अपने लड़केन का पढ़ावें लागे।'' ....आज कोइसने में जड़ने कोइरी का देखों वही के लड़के इलाहाबाद अब लखनऊ पढ़े जाय लगे हैं। अपने मुसलमानन में परजा-पौनी तक में लउन पढ़ें खातिन लड़के बाहेर चले गये हैं। बताओ भला अइसे में हमा-सुमाकी इज्ज़त वकार कड़ से कायम रही।'' इस पर बड़की अम्मा का तुर्रा- ''सुनित हैं कोइइनवा की जवान-जहान लड़कियन.... सायकिल से स्कूल जाय लागी।'' (पृ. 20) यह तो वही बात हुई कि 'राँड़ के पाँय सुहागिन लागे, हवै जा बहना मों जैसी' यानी हम तो सुधरेंगे नहीं और तुम्हें भी सुधरने नहीं देंगे या सपने देखने का अधिकार सिर्फ तथाकथित बड़े लोगों को ही, छोटो को नहीं। बड़की अम्मा का यह अभिशाप 'सज्जो' सहित तमाम पठान लड़कियों को भोगना पड़ता है। सज्जो की पढ़ाई रुक जाती है, अरशद से प्रेम-भाव रहते हुए अरशद की शादी किसी और लड़की से करा देती हैं, सलीम से पुनः तय होने पर न केवल उस शादी को तुड़वा देती हैं बल्कि उसकी इज्ज़त उछाल लेने में कोई कमी नहीं छोड़ती हैं। वह तो 'सज्जो' का चरित्र ही ऐसा उज्ज्वल है कि वह उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाती हैं। इतना तो तब है जब 'सज्जो', बड़की अम्मा की परम भक्त और सेविका है एवं उसकी माँ ज़िगरी सहेलियों में से एक। बड़की अम्मा अपने आगे किसी को भी कुछ नहीं समझती हैं। 'अतिया' की इज्ज़त पर कीचड़ उछालकर उसे मार ही डालती हैं और ताहिरा तथा हुमयरा के पलायन में भी अम्मा-बुआ की बंदिशें और मनोवृत्तियाँ ही है।

जैसा कि पूर्व ही उल्लिखित है, यह नारी-प्रधान उपन्यास है बल्कि नारी-चेतना को समर्पित। पुरुष-पात्रों का होना, न होने के बराबर है। यदि कहा जाय कि 'सज्जो' इसकी नायिका और 'बड़की अम्मा' खल-नायिका हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी, कारण लेखक ने अपनी ओर से किसी को नायक नहीं बनाया है। बड़की अम्मा एण्ड कंपनी रूढ़िवादी, कट्टरपंथी, सामंती दंभग्रस्त पीढ़ी की प्रतीक है तो अकेली सज्जो उत्तर आधुनिक नारी-चेतना की। उसकी प्रत्येक बात, आचार-विचार आदि में नारी-मुक्तिवादी चेतना दृष्टिगोचर होती है। पति और परिवार वालों, बड़की अम्मा आदि के षड्यंत्रों और यातनाओं के कारण काल के गाल में जाने वाली 'अतिया' के पति के बारे में सज्जो का विचार है-''हमरी चलै तो उनहू का खोदवाय के साथै गड़वाय देई।'' (पृ. 239) नारियों की स्थिति के बारे में सज्जो का विचार है-''हमरे लोगन में तो लड़कियन् की जिंदगी जहन्नम की जिंदगी से बत्तर होंत ही। जेका जहन्नम की जिंदगी देखें का सउक होयऊ आय के हमरे लोग का जिंदगी देख ले।'' (पृ. 166) वह बड़की अम्मा को कोसते हुए कहती हैं-''वाह रे बड़की अम्मा। दोनों बेटों को तो पढ़ने लखनऊ और अलीगढ़ तक भेज दिया, बेटियों की बारी आयी तो औलिया बनने लगीं।''(पृ. 76) 'सज्जो' की बात का समर्थन करते हुए उसकी बहन सद्दो कहती है-''सज्जो ठीक ही कहत हीं। ई जहन्नम की जिंदगी से तो अच्छा हैं की अल्ला पाक हमरे लोगन को पैदे ना करते न।''(पृ. 239) और इस नरक-निर्माण में बड़की अम्मा का बहुत बड़ा हाथ है। तभी तो 'सद्दो' कहती है-''औरत, औरत की दुस्मन होत ही।''(पृ. 302) और सज्जो का मानना है कि बड़की अम्मा ढ़ोंगी है-''उनका लोगन की मदद करना ढ़कोसला है।''(पृ. 397) 'सज्जो' का यह व्यंग्य भी 'बड़की अम्मा' के कारनामों की प्रतिक्रिया ही है- ''ईहमरा रंग गोरा नाहीं हम्मै कोढ़ होइगा है। हम तौ खुदै अवारा हैं अब आवारा बना वैकी फैक्ट्री हैं। तुहै ई पत्तै नाहीं की हम कुत्ती हैं। मानै रंडी।''(पृ. 359)...खुद टाँडा जीप मोटर से कपड़ा खरीदने जायें तो कोई बुराई नहीं क्योंकि पैसे वाली हैं। जो अमीर नहीं सारी बुराई उन्हीं में है। कोई औरत या लड़की हँसकर की बाज़ार में कपड़ा खरीदने चली गयी तो पठानों की शान घट जायेगी। खाँ साहेब खाँ साहेब न रह कर धुनिया, फ़कीर हो जायेंगे।'' (पृ. 70)....अपनो की तरफ देखते वक़्त आँखों में मोतियाबिंद

उतर आता है, बाकी दूसरों के लिए आँखें दूरबीन हो जाती हैं। दूसरों की खुशी कलेजे को आरी बनकर चीरती है।''(पृ. 84). ....भय्या फेल हो तो कोई बात नहीं, हम पढ़ाई का नाम ले तो बउरहट है।''(पृ. 94)....औलाद होय के बावज़ूद केहू लड़की का बेटवा की नाहीं समझत है। (पृ. 95) ये नारी चेतना के कुछ ऐसे बिंदु हैं जो 'आधी दुनिया' उपन्यास में रेखांकित किये जा सकते हैं।

'सज्जो' का बुरा सोचने और करने में 'बड़की अम्मा' ने कोई कमी नहीं छोड़ी। उसकी पढ़ाई छूटी, दो-दो बार सगाई टूटी और कुँवारी ही रह गयी परंतु हार नहीं मानी। अपनी पढ़ाई तो आगे नहीं कर पाई परंतु अपने भाई-बहनों को आगे पढ़ाने के लिए बड़की अम्मा की चिंता न करते हुए अपने घरवालों को राजी करा लेती है। बेलाल (भाई) इलाहाबाद पढ़ने जाता है और गुल शहर जाती है। बड़की अम्मा के चरित्र का पर्दाफाश नाज़ के इस वक्तव्य से होता है- ''नाज़ का दिल घबराने लगा। मन भर आया। जी में आया कि अभी इसी समय अरशी की अम्मा ...किसी से कुछ छुपा नहीं है। अल्ला करें उनको भी ऐसी ही रूसवाई सहनी पड़े। वह दिल की गहराइयों से दुआ माँगती हुई बोली-''उनके नसीब में ई बियाह नहीं रहा।''(पृ. 366)

सज्जो ने अपनी अम्मा के सम्मुख एक प्रतिज्ञा की थी कि बड़की अम्मा और कुच्चा बुआ आदि चाहे कितनी भी उसकी बदनामी कर लें लेकिन वह किसी के साथ भागेगी नहीं और न ही कोई गलत काम करेगी। दूसरी एक भविष्य-वाणी की थी कि पठानों को भी अपनी लड़कियों को गाँव से बाहर एक न एक दिन पढ़ने भेजना पड़ेगा। सज्जो की दोनों बातें सच निकलती हैं। वह न तो किसी के साथ भागती है और न ही गलत काम करती है और उसकी भविष्यवाणी सच निकलती है। 'बड़की अम्मा' भी अब सोचने लगी है कि शायद साजिया सच कह रही थी। दूसरी तरफ उसके अब्बा और अम्मी बच्चों को बाहर पढ़ाने के लिए तैयार हो जाते हैं। फिर सज्जो को लगता है कि वह 'जमीन से उठकर हवा में उड़ने लगीं है। लेकिन पैर जमीन पर ही हैं।' वह खुद तो अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाई परंतु उसकी अगली पीढ़ी अवश्य पूरी करेगी।

इस प्रकार यह उपन्यास नारियों के लिए समर्पित है। इस औपन्यासिक कथा के चार समर्पित है। इस औपन्यासिक कथा के चार बिंदु हैं-मुस्लिम ग्रामीण-जीवन का चित्रण, उसके अहं प्रदर्शन और जाति दंभ का प्रस्तुतीकरण, नारी-शिक्षा के प्रति कट्टरपंथी उदासीनता और प्रवासी पतियों की पत्नियों की वियोगजन्य पीड़ा और उनके जीवन की त्रासदी की मार्मिक अभिव्यक्ति। भूमिका में लेखक के मन में अपने लोक-भाषा (भोजपुरी) को लेकर संशय है कि शायद पाठकों के लिए दुर्बोध हो परंतु ऐसा नहीं है। हाँ! कुछ नितांत देशज शब्द, जैसे 'अइला' आदि कुछ देर के लिए परेशान अवश्य करते हैं परंतु बाद में सब कुछ ठीक हो जाता है। समस्या लोक-भाषा प्रयोग की नहीं, समस्या कथा-सूत्रों के साथ बराबर न्याय की है। चारों कथा-सूत्र अपने लिए अलग-अलग उपन्यास लेखन की माँग करते है और लेखक चारों का निर्वाह करना चाहता है। फलस्वरूप वह एक का भी नहीं हो पाता है। ग्रामीण-जीवन के चित्रण के नाम पर कथा के माध्यम आये ग्राम्य-दृश्य विषयांतर और सायास जोड़े गये प्रतीत होते हैं। वे कथा-प्रवाह में सहायक न होकर बाधक प्रतीत होते हैं। अतिया और सद्दो की विरह-कथा भी अति संक्षिप्त प्रासंगिक कथा का ही रूप मात्र ले पाती है। हाँ! जाति दंभ की सफल अभिव्यक्ति बड़की अम्मा के रूप में देखी जा सकती है परंतु सज्जो की अधूरी कथा से पाठक संतुष्ट होगा, रंच संदेह है। कथाकार बेवक़्त उसे अकेले छोड़ जाता है, सिर्फ एक संकेत मात्र है कि वह उड़ तो रही है परंतु उसके पाँव धरती पर हैं, अर्थात् आत्मनिर्भर है। वह अंत में जीतकर भी हार जाती है और आजीवन कुँवारी रहने के लिए अभिशप्त है।

विभागाध्यक्ष-हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, खैर,अलीगढ़

समीक्ष्य कृति-आधी दुनिया, लेखक-मेराज अहमद
प्रकाशन-शिल्पायन, प्रकाशक एवं वितरक, 10295, लेन नं.I वेस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली,
मूल्यः 600

पुस्तक–समीक्षा

साहित्य और समाज के लोकतांत्रिककरण की प्रक्रिया का नया आख्यान

सुनील यादव

'मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में' एम. फ़ीरोज़ खान की नई पुस्तक है। इस किताब का ऐतिहासिक महत्त्व इसलिए है कि यह वैज्ञानिक तरीके से मुस्लिम समाज की संरचना, उसके रीति-रिवाज तथा मान्यताओं पर बात करती है। यह दुखद है कि मुस्लिम समाज पर ठहरकर कोई समाजशास्त्रीय काम कम से कम हिंदुस्तान में नहीं हुआ है, हुए भी हैं तो छिटपुट काम हुए हैं। यह किताब इस कमी को पूरा करती है, साथ ही मुस्लिम समुदाय के संदर्भ में फैलाई गई तमाम भ्रांतियों का पर्दाफास भी करती है। यह पुस्तक दो खंडों में है- पहला खंड जिसे हम सैद्धान्तिक खंड कह सकते हैं मुस्लिम समाज के विविध पहलुओं पर है। दूसरा, व्यवहारिक खंड में हिंदी में लिख रहे मुस्लिम रचनाकारों की सर्वश्रेष्ठ कृतियों के मूल्यांकन का है, इन दोनों खंडों को मिलाकर पढ़े तो यह मुस्लिम समाज की मुक्कमल तस्वीर पेश करती हुई पुस्तक है।

'हिंदी प्रदेश और मुस्लिम समाज' इस किताब का एक दस्तावेजी अध्याय है, इसमें विस्तार से मुस्लिम सामाजिक संरचना, इस्लाम का उदय और विकास, मुस्लिम समाज के रीति-रिवाज, त्यौहार, मुस्लिमों की शैक्षिक तथा रोजगार की स्थिति पर विस्तार से विचार किया गया है। मुस्लिम समाज पर इतना सुसंगत और समग्र अध्ययन कम देखने को मिलता है। हज़रत मोहम्मद ने अरब के विभिन्न कबीलों को एक सूत्र में बाँधने तथा अरब समाज से ऊँच-नीच, अमीर-गरीब के मध्य चली आ रही गैर बराबरी को समाप्त कर, समानता लाने के लिए 610 ई. के लगभग 'इस्लाम धर्म' का प्रवर्तन किया। उन्होंने स्त्री जाति को संपत्ति के साथ तलाक का अधिकार दिया। विधवा विवाह को मान्यता दी। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में भले ही यह महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक कदम था, पर यह अधिकार पुरुषों के बराबर हर्गिज न था। 'इस्लाम' का शाब्दिक अर्थ समर्पण है। इस्लाम धर्म का नाम 'इस्लाम' इसलिए रखा गया है कि यह अल्लाह के आदेशों का अनुवर्तन और आज्ञा पालन है। 'इस्लाम' धर्म को मानने वाले लोग 'मुस्लिम' कहे गए। चूँकि हज़रत मुहम्मद अपने को आखिरी पैगंबर घोषित कर चुके थे, इसलिए उनकी मृत्यु के उपरांत इस्लाम के नेतृत्व के लिए खिलाफत की परंपरा शुरू हुई। पहले खलीफा को लेकर विवाद शुरू हुआ, परिणामस्वरूप इस्लाम के कई फाड़ हो गए, अली के अनुयायी शिया तथा अबू बकर के अनुयायी सुन्नी कहे गए। इस्लाम धर्म अपने सामाजिक समानता के सिद्धांत तथा सूफी विचारधारा के कारण लोकप्रिय हुआ।

हिंदुस्तान में मुसलमानों के आगमन के फलस्वरूप वे यहाँ की संस्कृति और सभ्यता से प्रभावित हुए और यहाँ के लोगों को प्रभावित भी किया। अरब की परिस्थितियों में उपजा यह धर्म जब हिंदुस्तान में आया तो भाईचारे एवं समता के सिद्धांत के बल पर इसने लोगों को आकृष्ट किया और सामाजिक रूप से पिछड़े भारतीयों ने इस धर्म को ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त आंशिक सच यह भी है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों और मुस्लिम राजाओं ने बलात् धर्म परिवर्तन कराया। मुसलमानों को भी जाति प्रथा का ग्रहण लगा, लिहाजा शूद्र जाति से धर्मांतरित मुसलमान शेखों और सैय्यदों की तुलना में नीची जाति की श्रेणी में ही रहे। मुसलमान भारत में सत्ता पर भी काबिज हुए, जमींदार भी बने। भारतीय समाज की कल्पना मुसलमानों के बिना नहीं की जा सकती। राही मासूम रज़ा ने लिखा है कि, ''हिंदुस्तान के मुसलमानों ने हिंदू संस्कृति और सभ्यता को अपने खून-दिल से सींच कर भारतीय संस्कृति और सभ्यता बनाने में बड़ा योगदान दिया है। "भारत में स्थापित औपनिवेशिक ताकत (अंग्रेजों) ने मूल या स्थानीय एवं बाहरी तथा गुलाम एवं शासक जैसे आख्यान रच कर भारत को दो बड़े समुदायों के आधार पर बाँट दिया। यही वह विष था जिसने भारत में सांप्रदायिक ताकतों को जन्म दिया। धर्म जब व्यक्ति और समाज को त्यागकर राजनीति का दामन थाम लेता है तो उसकी मानवीय भूमिका समाप्त हो जाती है, तब वहाँ नफरत की फसल उगती है। सांप्रदायिकता और कठमुल्लापन इसका दूसरा नाम है। 1947 में देश का विभाजन ही नहीं हुआ बल्कि राजनीति ने धर्म को आधार बनाकर सदियों पुराने सामाजिक संबंधों में खटास ला दी। परिवार टूट गए और साझी संस्कृति भी इस बँटवारे का शिकार हुई। राही मासूम

रज़ा ने चेतावनी देते हुए कहा था कि, ''यदि धर्म का सत्ता प्राप्ति के लिए इस्तेमाल नहीं रोका गया तो इससे देश को दुबारा बहुत गंभीर परिणाम झेलने पड़ेंगे। एम. फ़ीरोज़ अपनी इस पुस्तक में इन सभी बातों पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

जमींदारी व्यवस्था टूटने के बाद उत्तर भारत में मुसलमानों की स्थिति और भयावह हो गई। मुल्क के बँटवारे से उनके कंधे टूटे थे, जमींदारी उन्मूलन ने तो कमर ही तोड़ दी थी। जमींदारी व्यवस्था की ऐतिहासिक भूमिका समाप्त हो गई जिसके चलते साधारण जन और छोटे किसानों को फायदा हुआ। मध्यवर्ग का संकट, जातीय संगठनों तथा धार्मिक गठजोड़ों का मजबूत होना, धर्म परिवर्तन का होना लेकिन जाति का अपरिवर्तित रहना, मुस्लिम समाज के लिए चिंता का सबब बनता गया। साम्राज्यवाद द्वारा बोया गया सांप्रदायिक बीज तेज़ी से फलने-फूलने लगा और यह भारतीय राजनीति का अनिवार्य हिस्सा बन गया। आज़ादी के सुनहरे सपने से सम्पूर्ण भारतीय जनता को एक उम्मीद थी। जाहिर है इसमें मुसलमान भी सम्मिलित थे। आज़ादी के बाद आम आदमी बुरी तरह हताशा से घिरता चला गया। सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण मुसलमान समाज स्वकेंद्रित होने लगा। बहुसंख्यक वोट बैंक के तुष्टीकरण की राजनीति के चलते मुसलमान समाज सभी स्तरों पर उपेक्षा का शिकार हुआ। वे अशिक्षा, बेरोजगारी, गरीबी के शिकार होते चले गए। मुस्लिम समाज की ये समस्याएं आज अन्य समुदायों की तुलना में काफी भयावह हैं। इन बातों की पुष्टि सच्चर कमेटी समेत तमाम रिपोर्टों द्वारा होती रही है। इन परिस्थितियों का कठमुल्लों ने फायदा उठाया और ये लोग मुस्लिम समाज के स्वयंभू नेता बन गए और असुरक्षा बोध के चलते मुस्लिम समाज धीरे-धीरे इन कठमुल्लों की गिरफ़्त में आता गया। भारत में अन्य समुदायों की अपेक्षा मुस्लिम समुदाय की स्त्रियों के हालात और भी बदतर हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, स्वतंत्रता हर मामले में मुस्लिम स्त्री की दशा शोचनीय है। मुस्लिम समुदाय में स्त्रियों की दशा में सुधार न होने का प्रमुख कारण है कि मुस्लिम समुदाय में कोई खास बदलाव नहीं हुआ है, साथ ही बड़े पैमाने पर समाज सुधार के प्रयास भी नहीं हुए, जो बेहद ज़रूरी थे। मुस्लिम औरतों के पास आर्थिक स्वतंत्रता नहीं है, शिक्षा का अभाव है, वे स्कूल तो जाती हैं पर चौथी-पाँचवीं कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देती हैं। उनकी पढ़ाई छोड़ने का कारण यह नहीं है कि मुस्लिम औरतें पर्दे में रहती हैं, मुस्लिम औरत के नहीं पढ़ने का मूल कारण गरीबी है। उनकी स्थिति अनुसूचित जाति की तरह है, जिस वजह से अनुसूचित जाति की औरत नहीं पढ़ पाती है, उसी वजह से मुस्लिम औरत नहीं पढ़ पाती है। धर्म उतना बड़ा कारण नहीं है ।

इस किताब से गुज़रते हुए हम यह देखते हैं कि इस्लाम की धार्मिक मान्यताएं तथा विश्वास हिंदू धर्म की मान्यताओं के काफी करीब हैं। रोजा या उपवास की प्रक्रिया हिंदू धर्म में भी है, जिसमें नवरात्रि के 9 दिन के व्रत प्रमुख हैं। इसी तरह तीर्थ यात्रा, दान देना (जकात), ईश्वर आराधना (नमाज़) इत्यादि की प्रक्रिया हिंदू धर्म से मिलती-जुलती है। आज सांप्रदायिक विभाजन के दौर में इन बातों को रेखांकित किया जाना ज़रूरी है। मुस्लिम समाज के भी अपने कुछ धार्मिक विश्वास हैं- कुरान, हदीस, कयामत, फरिश्ते, जन्नत, दोजख, पैगम्बर, जिन्न, जेहाद इत्यादि। भारत के अन्य समुदायों की तरह मुस्लिम समुदाय के भी कुछ विशिष्ट। त्योहार हैं जिन्हें वह उल्लास के साथ मनाता है। (ईद, बकरीद, शबे-बारात, मोहर्रम आदि) जिससे समाज में समय-समय पर उत्सवधर्मिता बनी रहती है, ये त्योहार अपने समाज से गहरे अर्थों में संपृक्त होते हैं। राही मासूम रज़ा का पूरा साहित्यिक मुहर्रम के वर्णनों से भरा पड़ा है, वे मुहर्रम को ठेठ भारतीय त्योहार मानते थे। मुस्लिम समुदाय की रीतियों के लिए कोई मुस्लिम विधि निर्धारित नहीं की गई है फिर भी हिंदुस्तानी समाज में गहरे रूप से इसकी स्वीकारोक्ति है। मुस्लिमों के जन्म संस्कार, विवाह की रीतियाँ, मृत्यु संस्कार को ध्यान से देखने पर हिंदू संस्कारों से पर्याप्त समानता देखने को मिलती है, हिंदुओं और मुस्लिमों में होने वाले जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार एक दूसरे के अलगाव के खिलाफ खड़े होते है।

यह किताब इस बात का बहुत ही साफ तथा सटीक ढंग से मूल्यांकन करती है कि मुसलमानों के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन परस्पर भिन्न हैं तथा एक ही भू-भाग में रहने वाले हिंदू और मुसलमानों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में समानता भी देखने को मिलती है। हिंदू और मुसलमानों की यह सांस्कृतिक एकता 'मुस्लिम अस्मिता' का सवाल उठाने वाले कट्टर हिंदूवादियों के तर्कों को भी खारिज कर देती है। मुस्लिमों की जनसंख्या वृद्धि दर अन्य समुदायों की वृद्धि दर से ज्यादा है। इसका मुख्य कारण मुसलमानों में शिक्षा का अभाव है। महिला साक्षरता दर की कमी एवं महिलाओं के विवाह की औसत आयु का कम होना है। कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि असुरक्षा की भावना को ध्यान में रखते हुए मुसलमान परिवार नियोजन को नहीं अपनाते, लेकिन 1991-2001 के बीच जनसंख्या वृद्धि दर(2.58 प्रतिशत) मुसलमानों में अब तक सबसे कम रही है, जबकि 1992 के बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद मुस्लिम समाज सबसे ज्यादा असुरक्षाबोध का शिकार हुआ है। इसलिए असुरक्षाबोध का यह तर्क उचित प्रतीत नहीं होता।

भारतीय मुसलमान शिक्षा के क्षेत्र में देश के अन्य समुदायों से पीछे है। इस समुदाय में बड़े पैमाने पर फैली गरीबी और बेरोजगारी इसके लिए जिम्मेदार है। मुस्लिम समुदाय की वे बिरादरियाँ जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक है, वे शिक्षा के मामले में भी आगे हैं। आधुनिक सोच और शिक्षा से वंचित मुस्लिम समाज का एक बड़ा तबका मुल्ला-मौलवियों के प्रभाव से ग्रस्त जीवन के हर क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। उनकी साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है। प्राथमिक शिक्षा के बाद स्कूल छोड़ देने वाले मुस्लिम बच्चों की संख्या सबसे ज्यादा है। इसी कारण स्नातक तथा स्नातकोत्तर करने वाले मुस्लिम विद्यार्थियों की संख्या उनकी आबादी के अनुपात में काफी कम है। मुस्लिम समाज का अधिकांश हिस्सा भयंकर गरीबी से जूझ रहा है। इनकी स्थिति हिंदू धर्म के मजदूर तथा श्रमशील जनता की तरह ही है। वह भी मजदूरी एवं कुटीर उद्योगों के भरोसे ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं। मुस्लिम समाज की अधिकांश आबादी स्वरोजगार पर भरोसा करती है।

साहित्य और समाज परस्पर संबंधित होते हैं। साहित्य की जड़ें समाज में होती हैं। वह स्वयं एक सामाजिक उत्पादन है। इस स्थापना की झलक हिंदी उपन्यास में भी देखी जा सकती है। एम. फ़ीरोज़ खान इसी स्थापना के तहत मुस्लिम समाज के सैद्धांतिक पक्ष पर लिखने के बाद उसे व्यहारिक रूप से समझने के क्रम में मुस्लिम समाज संबंधी रचनाओं का विश्लेषण करते हैं। हिंदी उपन्यास अपने उदय के ऐय्यारी और तिलिस्म के दौर से चलकर एक लंबी यात्रा तय कर चुका है। उसने भारतीय समाज के विविध पहलुओं को छुआ है। अब उपन्यास के जनतंत्र में ऐसे लोग जगह पा रहे हैं जो कभी हाशिए पर ढकेल दिए गए थे। यह हिंदी उपन्यास की चौहद्दी का विकास ही है कि आज मुस्लिम, दलित एवं आदिवासियों के जीवन पर उपन्यास लिखे जा रहे हैं। डॉ. श्यामाचरण दुबे जैसे समाजशास्त्री ''देश विभाजन की त्रासदी पर सशक्त और हिला देने वाले'' उपन्यास की माँग तो करते हैं पर उनकी नज़र से भी देश विभाजन के बाद का मुस्लिम जीवन का व्यापक परिवेश छूट जाता है। शानी ने सबसे पहले यह सवाल उठाया था कि हिंदी उपन्यास में मुसलमान पात्र कहाँ हैं?

'समकालीन भारतीय साहित्य' पत्रिका के 41 वें अंक में नामवर सिंह से बात करते हुए शानी ने सवाल उठाया था कि ''क्या किसी भी देश का भौगोलिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक मानचित्र 12-15 करोड़ मुस्लिम वजूद को झुठलाकर पूरा हो सकता है?...नामवर जी कई वर्ष पहले आपने कहा था कि हिंदी साहित्य से मुस्लिम पात्र गायब हो रहे हैं। मुस्लिम पात्र जब थे ही नहीं तो गायब कहाँ हो रहे हैं। प्रेमचंद में नहीं थे, यशपाल में आंशिक रूप से थे। ...गोदान जो लगभग क्लासिकी पर जा सकता है और हमारे भारतीय गाँव का जीवंत दस्तावेज है, उसमें गाँव का कोई मुसलमान पात्र क्यों नहीं हैं? क्या अपने देश का कोई गाँव इनके बिना पूरा हो सकता है? प्रेमचंद फिर भी उदार हैं, जबकि यशपाल के 'झूठा सच' में नाम मात्र के मुस्लिम पात्र नहीं हाड़-मांस के जीवंत लोग हैं। लेकिन उसके बाद? अज्ञेय, जैनेन्द्र, नागर जी या उनकी पीढ़ी के दूसरे लेखकों में क्यों नहीं? और उससे भी ज्यादा तकलीफदेह यह है कि आज़ादी के बाद के मेरी पीढ़ी के कहानीकारों में और उसके बाद के कहानीकारों में भी नहीं हैं। ...हिंदी में ही क्यों नहीं हैं? जबकि तेलुगू में हैं, असमिया में हैं, बँगला में हैं।''

इस प्रकार यह सत्य है कि सन 65 में शानी के 'काला जल' के आने से पहले मुस्लिम जीवन हिंदी उपन्यास के हाशिए पर था। 'काला जल' में शानी ने भारतीय मुसलमान के दुख-दर्द को पिरोने के क्रम में मुस्लिम समाज के आचार व्यवहार, रूढ़ियाँ, रीतियाँ, भय, अंधविश्वास, तीज-त्योहार, स्त्री की दयनीय दशा, अशिक्षा इत्यादि का प्रामाणिक चित्रण किया है। इसी प्रकार नासिरा शर्मा का उपन्यास 'ज़ीरो रोड' के संदर्भ में एम. फ़ीरोज़ लिखते हैं कि 'ज़ीरो रोड उपन्यास में लेखिका ने साम्प्रदयिकता के स्वरूप पर प्रकाश डालने के लिए हिंदू मुस्लिमों में व्याप्त होने वाली घृणा और उसके परिणामस्वरूप, उसकी प्रतिक्रिया और व्यक्ति मन में चढ़े जुनून का चित्रण कर यह संदेश दिया है कि जुनून में व्यक्ति मानवता तक भूल जाता है और दंगा-फसाद हो जाता है जबकि आम आदमी ऐसा करना नहीं चाहता। दंगा-फसाद कुछ ही व्यक्तियों की देन है।' 'विभाजन और मुस्लिम उपन्यासकार' इस किताब का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है, मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों से गुज़रते हुए इस अध्याय में विभाजन की त्रासदी के मूल कारणों तथा विभाजन के बाद बदलते मुस्लिम मानस को समझने की कोशिश की गई है। एम. फ़ीरोज़ इसके लिए शानी, बदीउज्ज़माँ, राही मासूम रज़ा, नासिरा शर्मा, मेहरुन्निसा परवेज, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों की गहराई से पड़ताल करते हैं। वे लिखते हैं कि 'विभाजन के पश्चात् प्रभावित मुस्लिम समाज का उल्लेख नासिरा शर्मा, राही मासूम रज़ा, बदीउज्ज़माँ आदि उपन्यासकारों ने किया है। विवेच्य संवादों में व्यक्त मानसिकता से स्पष्ट है कि अधिकांश मुसलमान न ही पाकिस्तान के निर्माण के पक्ष में थे और न ही पाकिस्तान के प्रति उनमें कोई रुचि थी.....अर्थ की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए उससे प्रभावित होने वाले जीवन और सम्बन्धों पर अपने-अपने ढंग से असगर वजाहत, शानी, मेहरुन्निसा परवेज ने प्रकाश डाला है।' ***शेष भाग पृ. 79 पर.....***

पुस्तक–समीक्षा

मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में

रमाकान्त राय

भारतीय समाज के दो बड़े समुदाय हिन्दू-मुसलमान का परस्पर साहचर्य पूर्ण जीवन के लगभग बारह सौ बरस बीत रहे हैं। अन्य पूर्ववर्ती धर्मानुयायी भारत आकर यहाँ के लोगों में जिस तरह घुल-मिल गए और यहाँ की संस्कृति को अंगीकृत किया, उसके मुकाबले इस्लाम कुछ विशिष्टताओं के साथ रहा और एक साझी संस्कृति विकसित हुई। लम्बे साहचर्य ने भारतीय संस्कृति और साहित्य को गहरे प्रभावित किया। अपने आरंभिक दिनों के हिंदी साहित्य में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान हिस्सा इस्लाम मतानुयायियों का लिखा हुआ है। अमीर खुसरो, रहीम, जायसी, मुल्ला दाउद, मंझन, कुतुबन, रसखान, अली मुहिब खां प्रीतम जैसे कई कवियों ने हिंदी में लिखा और रच-बस कर लिखा। धार्मिक द्वंद्व अपनी जगह था और सांस्कृतिक समागम अपनी राह। दोनों में टकराव कम से कम साहित्यिक क्षेत्रों में नहीं देखने को मिलते।

अंग्रेजों के आगमन ने हिन्दू-मुसलमान समुदायों के बीच जिन असमानताओं को उभारा और उनमें द्वंद्व निर्मित किया, उसके फलस्वरूप साम्प्रदायिकता का उदय हुआ। साम्प्रदायिकता के उदय का एक पहलू यह भी रहा कि हिंदी हिन्दुओं की और उर्दू मुसलमानों की भाषा बन गयी। सन 1837 में कचहरियों की भाषा के उर्दू बनाए जाने की ख़बर ने इस विभेद को और हवा दी। परिणाम यह हुआ कि भाषाओं में भी धार्मिक बंटवारा हो गया। स्वतंत्रता आन्दोलन में इस विभेद को बहुत अच्छी तरह से रेखांकित किया जा सकता है। आज़ादी मिलने के बाद धार्मिक आधार पर हुए विभाजन ने इस खाई को और चौड़ा किया। आज़ादी के तुरंत बाद यह महसूस किया जाने लगा कि हिंदी में न सिर्फ मुस्लिम लेखकों की उपस्थिति कम है, बल्कि मुसलमान पात्र भी नदारद हैं। राही मासूम रज़ा और गुलशेर खां शानी ने इस बात को शिद्दत से महसूस किया और इसकी तरफ ध्यान आकृष्ट कराया कि हिंदी साहित्य, विशेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के हिंदी साहित्य में मुसलमान संस्कृति और पात्रों की उपस्थिति इतनी कम क्यों है।

हिंदी साहित्य में मुस्लिम उपस्थिति बहुत कम है। इस उपस्थिति को इस तरह से रेखांकित करना शुरू हुआ है कि यह स्त्री, दलित, आदिवासी प्रश्नों की तरह एक मौजूं और अनिवार्य प्रश्न बन गया है। डॉ. एम. फ़ीरोज़ की किताब 'मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में' इसी उपस्थिति को रेखांकित करने की एक बेहतरीन कोशिश है। आज़ादी के बाद के भारत में विभाजन ने और वोट बैंक की राजनीति ने यह काम भी बहुत सफाई से किया है कि हिन्दू-मुसलमान को दो संस्कृति बनाकर प्रचारित किया है। साझी संस्कृति की वकालत करते हुए भी ध्यान इस तरफ ज्यादा रहा है कि उनके बीच दूरियां बनी रहें और उनके आपसी सम्बन्ध प्रगाढ़ न होने पायें। इसका एक उदाहरण यह भी है कि भारत के एक बड़ा समुदाय मुस्लिम संस्कृति के कई पक्षों से अनजान है। मुस्लिम धर्म से जुड़े तमाम रीति-रिवाज, त्यौहार, रस्म-व्यवहार आदि से एक बहुसंख्यक जनता अपरिचित है। डॉ. एम. फ़ीरोज़ की किताब 'मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में' इस बात को शिद्दत से महसूस करती है और हिंदी प्रदेश के मुस्लिम समाज पर एक व्यापक और व्यवस्थित अध्ययन रखती है। किताब में बहुत सलीके से समझाने की कोशिश हुई है कि भारत में इस्लाम के आगमन का इतिहास कैसा है और यह किस आपसी सम्बन्ध से विकसित हुआ है। किताब में यह बात बहुत संतुलित तरीके से रखी गयी है कि इस्लाम का इतिहास महज विद्वेष का इतिहास नहीं है बल्कि यह साझा व्यवहार का इतिहास है। यहाँ के शासक अपने शासन व्यवस्था में हिन्दू-मुसलमान नहीं करते थे।

किताब में मुस्लिम त्योहारों, रीति-रिवाजों के विषय में बहुत व्यवस्थित तरीके से परिचित कराने की कोशिश हुई है। डॉ. फ़ीरोज़ यह बहुत आवश्यक समझते हैं कि मुस्लिम रीति-रिवाजों को समझे बिना यह काम नहीं हो सकता। इसीलिए अपनी किताब में वे इस्लाम के भारतीय इतिहास के साथ-साथ मुसलमानों के तमाम सांस्कृतिक प्रत्ययों को रखते हैं। वे मुस्लिम समाज में नए वर्गीय बँटवारे की तरफ संकेत करते हैं, जो भारतीय देन है। भारत में मुसलमानों की खराब हैसियत के कारणों की पहचान करते हुए डॉ. फ़ीरोज़ रेखांकित करते हैं कि सरकारी नौकरियों में मुसलमानों की कम उपस्थिति इसका एक बड़ा कारण है और नौकरियों में कम उपस्थिति का

सबसे बड़ा कारण उच्च शिक्षा का अभाव है। किताब का एक बड़ा खण्ड हिंदी क्षेत्र में मुस्लिम समाज के विषय में है। यह इसलिए भी ज़रूरी है कि हिंदी प्रदेश में मुस्लिम समाज के विषय में परिचय का अभाव है। हम अपरिचय के कारण वास्तविक स्थिति जान सकने में असमर्थ हैं।

किताब में मुस्लिम जीवन की स्थिति के बाद हिंदी उपन्यासों पर विवेचना को केन्द्रित रखा गया है। इसमें हिंदी के पाँच ऐसे प्रमुख उपन्यासों पर गंभीरतापूर्वक गवेषणा है, जिसके लेखक मुसलमान हैं। काला जल, ज़ीरो रोड, छाको की वापसी, कोरजा और ज़िन्दा मुहावरे पर स्वतंत्र अध्याय में चर्चा है। इन उपन्यासों को भारत में मुसलमान जीवन की प्रमाणिकता के बरक्स भी देखा जा सकता है। काला जल, जो शानी का सबसे प्रमुख उपन्यास है, आज़ाद भारत में मुस्लिम समाज को समझने का सबसे प्रमाणिक दस्तावेज है। शानी ने इस उपन्यास में न सिर्फ मुसलमान जीवन को रेखांकित किया है, बल्कि आज़ादी के दौरान उनकी भूमिका, स्वतंत्रता के बाद उनके उपेक्षित होते जाने और उनकी छटपटाहट को बहुत खूबसूरती से व्यक्त किया है। किताब उपन्यास के कई अनछुए पहलुओं से परिचित कराती है। पाकिस्तान विमर्श, मुस्लिम जीवन की रूढ़ियाँ और उनसे बाहर निकलने की छटपटाहट को इस किताब में सलीके से उभारा गया है। छाको की वापसी बदीउज़्ज़माँ का प्रसिद्ध उपन्यास है। इस पर चर्चा बहुत कम हुई है, जबकि यह पहला प्रमुख उपन्यास है, जिसमें पूर्वी पाकिस्तान का सन्दर्भ लिया गया है। लेखक ने इसे ठीक ही 'बँटवारे का दस्तावेज' कहा है। छाको की वापसी के बहाने बंटवारे के दर्द को, उसकी पीड़ा को लेखक ने बहुत सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। उपन्यास में नासिरा शर्मा के दो उपन्यास ज़िन्दा मुहावरे और ज़ीरो रोड पर तथा मेहरुन्निसा परवेज के कोरजा पर स्वतंत्र पाठ है। यह सभी अध्याय शोध की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। किताब में एक अध्याय में हिंदी के मुस्लिम उपन्यासकारों के विषय में चर्चा है।

किताब हिंदी के मुस्लिम समाज पर बहुत गंभीर चर्चा करती है लेकिन इसमें स्वतंत्र रूप से चर्चा हेतु और भी कई उपन्यासों की कमी खटकती है। राही मासूम रज़ा के किसी भी उपन्यास की स्वतंत्र चर्चा का अभाव खटकता है। इसके अलावा इसी कड़ी में असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंजूर एहतेशाम जैसे प्रसिद्ध मुस्लिम उपन्यासकारों की कृतियों का स्वतंत्र विवेचन न होना भी अखरता है। लेखक ने एक अध्याय में हिंदी के मुस्लिम उपन्यासकारों का अध्ययन किया तो है, लेकिन पांच उपन्यासों पर स्वतंत्र चर्चा के क्रम में इन कृतियों पर बात का न होना इसे समग्रता के प्रभाव से वंचित करता है।

फिर भी, नवाचार के तहत इस किताब का स्वागत किया जाना चाहिए और मुस्लिम विमर्श की शुरुआत के तौर पर एक बड़े हस्तक्षेप के रूप में इसके महत्त्व को समझा जाना चाहिए। डॉ. फ़ीरोज़ इन दिनों नवाचार को प्रश्रय देने के लिए भी चर्चा में रहे हैं। वे लगातार नए विमर्शों को स्वर दे रहे हैं और उपेक्षित कर दिए गए महत्त्वपूर्ण रचनाकारों और रचनाओं को केंद्र में लाने के लिए निरंतर प्रयास कर रहे हैं। वाङ्.मय प्रकाशन की यह प्रस्तुति भी एक शानदार उदाहरण है।

365-ए 1, कंधईपुर, प्रीतमनगर, धूमनगंज, इलाहाबाद

पृ. 77 का शेष भाग.....

एम. फ़ीरोज़ 'छाको की वापसी' को भारत विभाजन के दस्तावेज के रूप में पढ़े जाने का आग्रह करते हैं, वे लिखते हैं कि 'बदीउज़्ज़माँ ने विभाजित भारत के मुसलमानों की मनोदशा का बड़े ही स्वाभाविक एवं सुंदर ढंग से चित्रण किया है ..... पाकिस्तान निर्माण के पीछे आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा को मुख्य रूप में बदीउज़्ज़माँ के छाकों की वापसी उपन्यास में देखते हैं। पाकिस्तान की परिकल्पना और उसके विरोध के दो पात्रों के बीच हुई बहस जीवंत कर देती है।' इस विषय पर 'छाको की वापसी' के हबीब भाई का यह वक्तव्य बहुत महत्त्वपूर्ण है ''बहुत तकलीफदेह हकीकत है.... की बिहारी मुसलमान की बंगाली मुसलमान के साथ गुज़र नहीं हो सकती। ...मैं समझता हूँ कि बिहार के हिंदू इन बंगाली मुसलमानों से यकीनन बेहतर थे।'' इसी क्रम में एम. फ़ीरोज़ मेहरुन्निसा परवेज का उपन्यास 'कोरजा' और नासिरा शर्मा के 'ज़िंदा मुहावरे' का मूल्यांकन करते हैं। अगर वे कोरजा को मुस्लिम संस्कृति और जीवन के व्यापक चित्रण के रूप में मूल्यांकित करते हैं तो ज़िंदा मुहावरे को 'देश विभाजन के पश्चात् व्याप्त आशंका, अशांत, द्वंद्व, संघर्ष विघटन' के विविध परिदृश्य के रूप में। अगर संपूर्णता में देखें तो यह पुस्तक समाज तथा साहित्यिक संदर्भों के साथ मुस्लिम समाज का एक समाजशास्त्रीय आख्यान रचती है ।

ग्राम- करकापुर, पोस्ट-अलावलपुर, जिला-गाज़ीपुर (उ.प्र.)

समीक्ष्य पुस्तक- 'मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में', लेखक- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान
वाङ्.मय प्रकाशन, 205 ओहद रेजीडेंसी, दोदपुर रोड, अलीगढ़-202002, मूल्य- 295/